



## प्रकाशक का निवेदन

साहित्य-रत्न-माला का यह तीसरा ग्रंथ "बौद्ध-कार्त्तिक भारत" पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए मुझे बहुत सन्तोष तथा आनन्द होता है। इस सन्तोष तथा आनन्द का कारण यह है कि मैंने ग्रंथों का जो आदर्श अपने सामने रखकर साहित्य-रत्न-माला का प्रकाशन आरंभ किया था, यह ग्रंथ भी, पहले दोनों ग्रंथों की भाँति, उस आदर्श के अनुरूप ही हुआ है। जैसा कि पाठकों को इसके अनुरागितन से विदित होगा, इसके सुयोग्य लेखक महोदय ने इसके लिखने में प्रशंसनीय परिश्रम किया है; और अपने प्रतिपाद्य विषय से सम्बन्ध रखनेवाली बहुत अधिक सामग्री का अच्छा उपयोग किया है। बौद्ध-कार्त्तिक भारत के संबंध की प्रायः सभी उपयोगी और ज्ञानमय बातों का इसमें समावेश हुआ है—करीब करीब सभी बातें इसमें आ गई हैं।

यह ग्रंथ आज से प्रायः तीन सालों की यादों से लिखा गया था, पर दुःख के साथ कहना पड़ता है कि इतने दिनों में ऐसे अच्छे ग्रंथ को प्रकाशित करने के लिये कोई प्रकाशक ही न मिला। हिन्दी के प्रकाशकों और पाठकों के लिये यह एक प्रकार से ख़ास की ही बात है। मैं स्वयं अपने अनुभव से कह सकता हूँ कि हिन्दी में अच्छे ग्रंथों का उतना अधिक आदर नहीं होता, जितना होना चाहिये। पर साहित्य-रत्न-माला आर्थिक काम की दृष्टि से नहीं निकाली गई है। और इसी लिये जब यह ग्रंथ मेरे सामने आया, तब मैं तुरन्त ही इसे प्रकाशित करने के लिये तैयार हो गया। यद्यपि मुझे कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और इस ग्रंथ की भाषा आदि ठीक करने में बहुत कुछ परिश्रम भी करना पड़ा,











अधिदेशन के बिदे कम से कम उपस्थिति का होरम—गण-पूरक का द्विप ।  
पृष्ठ १९० से १९७

## ग्यारहवाँ अध्याय

प्राचीन बौद्ध काल की सामाजिक अवस्था

बार वर्ग—ऊँच मीच का भाव—समान वर्ग में विवाह सम्बन्ध—  
धर्मियों की व्यवस्था—अग्नि—माद्वन—वैश्य—शूद्र—मेगास्थनीज के  
अनुसार सामाजिक दशा—माद्वन ग्रंथों के अनुसार सामाजिक दशा ।  
पृष्ठ २०८ से २२१

## बारहवाँ अध्याय

प्राचीन बौद्ध काल की सांघिक अवस्था

मानों की सांघिक अवस्था—नगरों की सांघिक अवस्था—ध्वारार  
और धार्मिक—ध्वारारिक मानों—समुद्री ध्वारार—ध्वारारियों में  
सहयोग ।  
पृष्ठ २२२ से २४२

## तेरहवाँ अध्याय

प्राचीन बौद्ध काल का साहित्य

नाया और अज्ञा—प्राचीन बौद्ध काल का पाली साहित्य—  
सुच-विट्ठ—विषय विट्ठ—अभिधम्म विट्ठ—प्राचीन बौद्ध काल का  
संस्कृत साहित्य ।  
पृष्ठ २४३ से २५३

## बीसहवाँ अध्याय

प्राचीन बौद्ध काल की शिल्प-कला

चतुर्दश शिल्पकला—दो कलिंग शिल्पकला—छत्र शिल्पकला—भाम्  
शिल्पकला—सप्त स्तम्भकला—छत्र स्तम्भकला—दो तराई स्तम्भकला—तीन  
गुहाकला ।  
पृष्ठ २५४ से २६८



### द्वितीय खण्ड

**पहला अध्याय**

राजनीतिक इतिहास

मौर्य काल के बाद देशी राजवंश—शुंग वंश—गुप्त वंश की स्थापना—शुंग राजाओं का राज्य विस्तार—मिलिन्द (मिन्नैन्डर) का आक्रमण—लार्चन का हमला—पुष्यमित्र का अधिपत्य पञ्च—सौदों पर पुष्यमित्र के अधिकार—पुष्यमित्र के राजतन्त्र—काण्व वंश—वसुदेव और उसके उत्तराधिकारी—आन्ध्र वंश—आन्ध्रों का मगध से प्राचीन उद्भव—सिमुद्र का वंश—हान राजवाहन—आन्ध्र राज्य का अधिपत्य—मौर्य काल के बाद—गर्गशा राजवंश—यवन (यूनानी) राजवंश—सिकन्दर और उसके बाद का आक्रमण—एन्टिओकस चौथा—एन्टिओकस प्रथम—पुट्रिडिमस—कपिल पर एन्टिओकस चौथा का हमला—भारत में ईसा पूर्व का अधिकार—यूकेटाइरीज के उत्तराधिकारी—मिलिन्द (मिनन्दर)—एन्टिपन्काइडस—इमैभस—भारतवर्ष पर यूनानी सभ्यता का प्रभाव—शक (सीथियन)—शकों का आक्रमण—उत्तरी जयप—पार्थिया क्षत्रप—भूमक—नहपान—चहन—इन्द्रामन्—क्षत्रपों का अधिपत्य—पार्थिव (पार्थियन) राजवंश—पार्थिव लोग कौन हैं—अश्वमेध प्रथम—मोअथु—एजस प्रथम—गौडोफर्निस—यवन राजवंश—यवनों का पूर इतिहास—कैटफ्रास्तिज प्रथम—कैटफ्रास्तिज उत्तराधिकारी—कनिष्क—कनिष्क काल—कनिष्क का राज्य-विस्तार—कनिष्क का राज—कनिष्क के समय की बौद्ध महासभा—कनिष्क की मृत्यु—शाम्भक—शुर्वक—वासुदेव और कृष्ण साम्राज्य का अन्त—ईसा की साम्राज्य शक्ति का अन्त आदि। पृष्ठ २०१ से २०८

ਪ੍ਰਸ਼ ੨੭੧ ਦੇ ੧੦੮

## दूसरा अध्याय

प्रजातन्त्र या गण राश्व

गौडेष गण—मालव गण—भार्जुनायन—भौतुम्बर—कुणिन्द—  
वृष्णि—सिन्धु । पृष्ठ २०९ से २१७

## तीसरा अध्याय

धार्मिक दशा

बौद्ध धर्मकी स्थिति—बौद्धों पर पुण्यमित्र का व्यापार—पश्चिमोत्तर  
भारत में बौद्ध महासभा—महायान संप्रदाय की उत्पत्ति—महायान और  
भक्ति-मार्ग—महायान पर भगवद्गीता का प्रभाव—महायान पर विदेशियों  
का प्रभाव—ईजप्तान और महायान में भेद—माझण धर्म की स्थिति—  
हुंग वंशी राजाओं के समय माझण धर्म—यवन राजाओं के समय  
माझण धर्म—तुयग राजाओं के समय माझण धर्म । पृष्ठ २१८ से २२०

## चौथा अध्याय

सामाजिक दशा

सामाजिक व्यवस्था पुण्यल—जाति भेद—माझणों का प्रभाव ।

पृष्ठ २२१ से २२३

## पाँचवाँ अध्याय

सांस्कृतिक दशा

भारत राजाओं के समय दक्षिणी भारत का व्यापार—तुयग राजाओं  
के समय उत्तरी भारत का व्यापार ।

पृष्ठ २२४ से २२७

## बड़ा अध्याय

### साहित्यिक दृष्टि

साहित्यिक दृष्टि—युग की कला का विकास के समय में सम्पूर्ण  
साहित्य—साहित्य के विकास में साहित्य—कविता के  
साहित्य—साहित्य के विकास में साहित्य—कविता के  
पृष्ठ ३३८ से ३४४

### साहित्यिक दृष्टि

#### साहित्यिक दृष्टि

साहित्यिक दृष्टि—साहित्य के विकास में साहित्य—कविता के  
साहित्यिक दृष्टि—साहित्य के विकास में साहित्य—कविता के  
पृष्ठ ३४५ से ३५४

### साहित्यिक दृष्टि

साहित्यिक दृष्टि—साहित्य के विकास में साहित्य—कविता के  
पृष्ठ ३५५ से ३६४

#### साहित्यिक दृष्टि

साहित्यिक दृष्टि—साहित्य के विकास में साहित्य—कविता के  
पृष्ठ ३६५ से ३७४  
साहित्यिक दृष्टि—साहित्य के विकास में साहित्य—कविता के  
पृष्ठ ३७५ से ३८४  
साहित्यिक दृष्टि—साहित्य के विकास में साहित्य—कविता के  
पृष्ठ ३८५ से ३९४

साहित्यिक दृष्टि—साहित्य के विकास में साहित्य—कविता के  
पृष्ठ ३९५ से ४०४  
साहित्यिक दृष्टि—साहित्य के विकास में साहित्य—कविता के  
पृष्ठ ४०५ से ४१४

## प्राक्पत्र



पं० जनार्दन भट्ट कृत यह ग्रंथ हिंदी भाषा के ऐतिहासिक साहित्य भंडार में उच्च स्थान ग्रहण करेगा। इस ग्रंथ के निर्माण में कितनी विद्वत्ता और कितने परिश्रम से काम लिया गया है, यह पाठकों को इसके पढ़ने से ही विदित होगा। प्रसिद्ध इतिहासकार गिबन का यह नियम था कि वह नई पुस्तक पढ़ने के पहले विचार कर लेता था कि इस विषय की मुझे कितनी जानकारी है। पढ़ने के बाद वह फिर विचार करता था कि अमुक पुस्तक से मैंने कितनी नई बातें सीखीं। यदि प्रस्तुत ग्रंथ के पाठक इस नियम का अवलम्बन करेंगे, तो उन पर इस ग्रंथ का महत्त्व अच्छी तरह प्रकट हो जायगा।

भारतवर्ष के इतिहास में बौद्ध युग अत्यंत उज्ज्वल और गौरवपूर्ण है। इस युग में धर्म, आचार, साहित्य, कला, उद्योग, व्यापार, राजनीतिक संघटन आदि सभी विषयों में देश ने आश्चर्यजनक उन्नति की थी। भारतीय इतिहास के अन्य युगों में, तथा वर्तमान युग में भी, एक गुण की कमी दिखाई देती है। हमारे देश ने संघटन शक्ति का यथोचित विकास नहीं किया। यदि दूसरों के सामने हमें कई बार मिर झुकाना पड़ा है, तो विद्या, बुद्धि या धन की कमी के कारण नहीं, किंतु संघटन की कमी के कारण ही। बौद्ध काल में देश ने राजनीतिक और साम्प्रदायिक संघटन का उत्तम

प्राक्कथित किया था। हमों गुग के मन्त्रों हमों देश ने समार पा  
 प्रमाण प्रमाण का पा था। आज भी म्याम, लका, तिब्बत, चीन  
 ताइवान आदि देशों में बौद्ध धर्म माना जात  
 है। तथापि इन देशों की मानसिक और सामाजिक स्थिति ने  
 बौद्ध धर्म का स्वरूप बहुत कुछ बदल दिया है। तथापि आज भी  
 इनके लोग सामाजिक सिद्धान्तों और आचार शास्त्रों पर भारी कें  
 द्रीय स्थिति दिखाते हैं। और पश्चिमी देशों में पहुँचकर  
 बौद्ध धर्म ने इन्हीं धर्म के चर्म और सिद्धान्तों पर बहुत प्रभा  
 व डाला। इन्हीं सिद्धान्तों का प्रयोग करने में नहीं करते, का  
 ये सिद्धान्त के लक्षणों के सामाजिक धर्मों में बौद्ध धर्म का मिलान  
 करने पर यह बात निश्चय रूप से स्पष्ट हो जाती है कि मध्य  
 एशिया के इन देशों में बौद्ध धर्म प्रचारकों का धर्म व्यव नहीं गया था।

यह धर्म ही मध्य-एशिया में मध्य एशिया के धर्मों में प्रच  
 लित माना गया है। मध्य एशिया के धर्मों में मध्य एशिया  
 तथा बौद्ध धर्मों का मिलान नहीं है। मध्य एशिया के धर्मों के  
 कल्याण यह है कि वह भूत-प्रेत राजनीतिक सामाजिक साहित्यिक  
 सामाजिक आर्थिक आदि सभी अवस्थाओं का समन्वित वर्णन करे  
 वास्तविकता का वर्णन कर और इन के कारणों की स्पष्ट करे।  
 यह जानने इस आदमी तक पहुँचने की चेष्टा की है। आशा है  
 कि मध्य एशिया में मानव इतिहास के अन्य समयों की वि  
 वर्णना भी इसी प्रकार के अनुसार करे।

प्रकाश विज्ञापनस्थल ।

वर्णनमाद

1-11-1999

# भूमिका



प्राचीन भारत का इतिहास समय के अनुसार तीन बड़े बड़े भागों में बाँटा जा सकता है; यथा—(१) वैदिक काल; (२) बौद्ध काल; और (३) पौराणिक काल। वैदिक काल का प्रारंभ कब से हुआ, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। मैक्स-म्यूलर, विट्सन और प्रिन्सिप साहब ने वैदिक काल का प्रारंभ मोटे तौर पर ई० पू० २००० या १५०० वर्ष में, जैकोबी महा-शय ने ई० पू० ४००० वर्ष में और विलक महाशय ने ई० पू० ५००० या ४५०० वर्ष में माना है। वैदिक काल का प्रारंभ चाहे जब से हुआ हो, पर हम निश्चित रूप से इतना आवश्यक कह सकते हैं कि वैदिक काल का अन्त ई० पू० छठी शताब्दी में बौद्ध धर्म के उदय से होता है। अतएव भारतीय इतिहास का बौद्ध काल ई० पू० छठी शताब्दी से लेकर ईसा के बाद चौथी शताब्दी तक माना जाता है। इसके बाद गुप्त-वंशी राजाओं के समय में बौद्ध धर्म का ह्रास और पौराणिक धर्म का विकास होने लगता है। अतएव चौथी शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक, अर्थात् गुप्तसम्राटों की विजय तक, पौराणिक काल कहा जाता है।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी से लेकर ईसा के बाद चौथी शताब्दी तक, अर्थात् मोटे तौर पर १००० वर्ष का समय, भारतवर्ष के

इतिहास में, इसलिये बौद्ध काल कहलाना है कि इस काल में अन्य धर्मों की अपेक्षा बौद्ध धर्म की प्रधानता थी। इस काल में जितने बड़े बड़े राजा और सम्राट् हुए, वे प्रायः बौद्ध धर्मावलम्बी ही थे। इस काल के जितने शिलालेख, मंदिरों और स्तूपों के जितने भग्नावशेष और जितनी मूर्तियाँ मिली हैं, वे अधिकतर बौद्ध धर्म संबंधी हैं। इस काल के शिलालेखों में जितने व्यक्तियों के नाम आये हैं, जितने देवी-देवताओं और दोनों के उल्लेख हुए हैं, उनमें से अधिकतर बौद्ध धर्म संबंधी हैं। इस काल के अधिकतर शिलालेख ब्राह्मणों की भाषा संस्कृत में नहीं, बल्कि जन साधारण की भाषा प्राकृत में हैं। पर इनके बाद गुप्त काल से लेकर अधिकतर शिलालेख संस्कृत में ही मिलते हैं। गुप्त काल के प्रारंभ में शिलालेखों में ब्राह्मणों, हिन्दू देवी-देवताओं, हिन्दू मंदिरों और यज्ञों का ही अधिकतर उल्लेख आता है। यहाँ तक कि पाँचवीं शताब्दी के तीन-चौथाई शिलालेख हिन्दू धर्म संबंधी ही हैं। पर इससे यह न समझ लेना चाहिए कि बौद्ध काल में हिंदू या ब्राह्मण धर्म बिलकुल लुप्त हो गया था। उस समय भी यज्ञ आदि होते थे, पर अधिक नहीं। हिंदू देवी-देवताओं की पूजा भी प्रचलित थी, पर पहले की तरह नहीं। इसका प्रमाण पुण्यमित्र के अश्वमेध यज्ञ, वसंतनगर के गरुड-ध्वज, कैडकाइसिड द्वितीय तथा वासुदेव के सिक्कों और वासिष्ठा के मथुरावाले स्तूप-स्तंभ से मिलता है। तात्पर्य यह कि बौद्ध धर्म की प्रधानता होने के कारण ही यह काल “बौद्ध काल” के नाम से पुकारा जाता है।

इस काल का इतिहास दो प्रधान भागों में बाँटा जा सकता है। एक भाग में बुद्ध के जन्म-समय से लेकर मौर्य साम्राज्य के

अंत तक का इतिहास है; और दूसरे भाग में मौर्य साम्राज्य के अंत से लेकर गुप्त साम्राज्य के पहले तक का इतिहास आता है। इसी त्रिंशे यह ग्रंथ भी दो खंडों में बाँटा गया है; और प्रत्येक खंड में उस समय की राजनीति, समाज, धर्म, संपत्ति, साहित्य, शिल्प-कला आदि का वर्णन यथासंभव विस्तारपूर्वक किया गया है। बौद्ध काल के दो विभाग इसलिये किये गये हैं कि पहले विभाग की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक दशा से दूसरे विभाग की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक दशा में बड़ा अंतर आ गया था।

इस ग्रंथ का उद्देश्य केवल उस समय के राजाओं और उनके कार्यों का ही वर्णन करना नहीं, बल्कि पाठकों के सामने तत्कालीन भारत के समाज, मभ्यत्ना, साहित्य, शिल्प-कला आदि का चित्र रचाना भी है। उस समय की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक और शिल्प-कला संबंधी दशा कैसी थी, यह पाठक-गण इस ग्रंथ में जान सकते हैं। इस ग्रंथ के लिखने में अपनी बन्पना में बहुत कम काम लिया गया है और कोई निराधार बात नहीं लिखी गई है। बौद्ध काल के संबंध में हमारे लेखकों ने समय समय पर जो बातें लिखी हैं, और जो अथ नक हमारे देखने आई हैं, उन्हीं को हमने इस ग्रंथ में एकत्र करने का प्रयत्न किया है। जहाँ जहाँ जिन लेखक या ग्रंथ से सहायता ली गई है, वहाँ वहाँ इसका उल्लेख भी कर दिया गया है। इस ग्रंथ के लिखने में जिन लेखों और ग्रंथों से सहायता ली गई है, उन की एक सूची भी पुस्तक के प्रारंभ में दे दी गई है।

अंत में हम प्रयाग विश्वविद्यालय के इतिहास-प्रोफेसर



बेणीप्रसाद जी एम० ए० को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते । आपने इस पुस्तक के निम्न में जो सहायता दी है, उसके बिना हम आपके विरहूत रहेंगे । यह कहना अन्याय है कि बिना आपकी सहायता के इस पुस्तक का निष्ठा जाना असंभव था । अनेक कार्यों के रहते हुए भी आपने यह पुस्तक पढ़कर हमें कई स्थलों पर संशोधन और परिवर्तन किये हैं । इसके लिये हम आपको जितना धन्यवाद दें, थोड़ा है । अपने मित्र डा० नरेंद्र-देव एम० ए०, वाइस प्रिंसिपल, काशी विश्वविद्यालय, को भी हम धन्यवाद देने हैं । आपसे भी हमें इस पुस्तक के निम्न में जो सहायता और उत्साह मिला है ।

लेखक ।

---

# बौद्ध-कालीन भारत

प्रथम खण्ड

( बौद्ध काल के उदय से मौर्य साम्राज्य के अन्त-तक )

# साहित्य-रत्न-माला

में

सचमुच

केवल रत्न ही प्रकाशित होते हैं।

यदि आप पारसी होंगे,

तो अवश्य उसके स्थायी भाद्रक बनेंगे।

# बौद्ध-कालीन भारत



## पहला अध्याय

### बौद्ध-कालीन इतिहास की सामग्री

बौद्ध-कालीन भारत के इतिहास की सामग्री मुख्यतया तीन भागों में बाँटी जा सकती है; यथा—(१) पाली और संस्कृत के ग्रन्थ; (२) विदेशी इतिहास-कारों और यात्रियों के ग्रन्थों में आये हुए भारत सम्बन्धी उल्लेख; और (३) शिलालेख तथा मूर्तियाँ आदि। पहले हम इन्हीं के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक और उपयोगी बातें बताने हैं।

### (१) पाली, प्राकृत और संस्कृत के ग्रंथ

जातक—बुद्ध के जन्म समय की तथा बुद्ध के जीवन-काल की भारतवर्ष की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दशा का बहुत कुछ विवरण जातक-कथाओं में मिलता है। जातक कथाएँ आत्रकल त्रिम रूप में मिलती हैं, उम रूप में वे पश्चात्तिन इनमें पुरानी न हों, पर त्रिम पटनाओं का हवाला उनमें है, वे अवश्य ही ई० पू० छठी और पाँचवीं शताब्दी की हैं।

बौद्ध धर्म के प्राचीन ग्रंथ—त्रिपिटक नाम के पाली ग्रंथों में

बुद्ध भगवान् के समय की भारत की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक दशा का बहुत कुछ ज्ञान हो सकता है। आगे चलकर इन ग्रंथों का विस्तृत वर्णन किया जायगा। ये ग्रंथ कदाचिन् बुद्ध के निर्वाण के कुछ ही समय बाद बने थे। इनमें हमें गौतम बुद्ध के बाद की कुछ राजादियों का प्रामाणिक इतिहास मिलता है। बौद्ध धर्म के अधिकतर पाली ग्रंथ लंका से प्राप्त हुए हैं। बौद्ध धर्म के अधिकतर सम्बन्धित ग्रंथ कनिक के समय के तथा उनके बाद के हैं। ये प्रायः पाली ग्रंथों के अनुवाद हैं, या उनके आधार पर लिखे गये हैं; और अधिकतर नेपाल, तिब्बत, चीन, जापान और चीनी तुर्किस्तान में पाये गये हैं।

जैन धर्म के सूत्र-ग्रंथ—जैन धर्म के सूत्र-ग्रंथ ईसा पूर्व तीसरी या चौथी राजाद्वी के कहे जाते हैं; पर कदाचिन् ये इसमें भी पुराने हैं। इनमें प्राचीन बौद्ध काल के विषय में बहुत सी ऐतिहासिक बातें मान्य हुई हैं। ये ग्रंथ प्राचीन अर्ध-आगधी भाषा में हैं।

औटिलीय ग्रंथ-शास्त्र—चाणक्य अथवा औटिल्य के अर्थशास्त्र से मौर्य साम्राज्य के शासन के सम्बन्ध में बहुत सी बहुमूल्य बातों का पता लगा है। कहा जाता है कि चाणक्य चंद्रगुप्त मौर्य का प्रधान मंत्री था। मेगास्थनीज ने भारतवर्ष का जो वर्णन किया है, उसमें और अर्थ शास्त्र में लिखी हुई बातों में बहुत कुछ समानता है।

पर्वजलि का महाभाष्य—पर्वजलि गुप्त वंशी राजा पुष्यमित्र के समकालीन थे। उनके महाभाष्य में जहाँ-तहाँ उस समय का बोधा बहुत उल्लेख आया है।

पुराणों की राज-वंशावली—अठारह पुराणों में में पंच पुराणों—वायु, मत्स्य, विष्णु, ब्रह्माण्ड और भागवत—में बौद्ध-चार्मीन राजाओं की प्रगल्भ मूर्ची की गई है। बहुत से युरोपीय लेखक पुराणों में दो हुई राजवंशों की मूर्ची की प्रामाणिक नहीं मानते और पुराणों को बहुत प्रार्थीन नहीं समझते। पर पुराणों में दो हुई राज-वंशावलियों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से बहुत सी ऐतिहासिक बात का पता लगता है। पुराण किसी न किसी रूप में ई० पू० चौथी शताब्दी में अवश्य वर्तमान थे; क्योंकि कौटिलीय अर्थशास्त्र में पुराण का उल्लेख आया है। बहुत से लोग पुराणों को और भी अधिक प्रार्थीन मानते हैं; और कुछ लोगों ने तो उपनिषद्ों तक में उनका उल्लेख ढूँढ़ निकाला है।

दीपवंश और महावंश—लंका के इन दो बौद्ध ग्रंथों में बौद्ध-चार्मीन राजवंशों और विशेषतः मौर्य वंश के संबंध की कई दृष्टियों से लिखी हुई मिलती हैं। ये दोनों ग्रंथ पाली भाषा में हैं। इनमें से “दीपवंश” कदाचित् ईसवी चौथी शताब्दी में और “महावंश” कदाचित् ईसवी पाँचवीं शताब्दी में रचा गया था।

मुद्राराक्षस—मुद्राराक्षस में नन्द वंश और चंद्रगुप्त के बारे में बहुत कुछ पता लगता है। इसमें नन्द वंश के नाश, चंद्रगुप्त के राज्यारोहण तथा चाणक्य की सुदृढ़ नीति का बहुत अच्छा वर्णन मिलता है। श्रीयुक्त काराप्रसाद जी जायसवाल के मत से यह नाटक चंद्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) के समय में, अर्थात् पाँचवीं शताब्दी के प्रारंभ में, रचा गया था। इस नाटक का रचना

काल चाहे जो हो, पर इसमें कोई संदेह नहीं कि हमके कथानक की घटनाएँ सही हैं।

**राजतरंगिणी**—कश्मीर के कल्हण पंडित का रचा हुआ राज-तरंगिणी नामक ग्रंथ ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्व का है। संस्कृत साहित्य में यही एक ऐसा ग्रंथ है, जिसे हम ठीक ठीक अर्थ में इतिहास कह सकते हैं। इसका रचना-काल ईसवी बारहवीं शताब्दी है। इसमें बौद्ध काल के मध्य की बहुतसी प्राचीन बातों का पता लगता है।

## ( २ ) विदेशी इतिहासकारों और यात्रियों के ग्रंथों में भारत के उल्लेख

**सिहंदर के सम कालीन यूनानी इतिहास-लेखक**—सिहंदर के समय तक भारतवर्ष यूरोप की दृष्टि में छिपा हुआ था। पहले पड़ले सिहंदर के आक्रमण से ही यूरोप के साथ भारतवर्ष का संबंध हुआ। सिहंदर के साथ कई इतिहास-लेखक भी थे, जिन्होंने तत्कालीन भारत का वर्णन अपने इतिहास-ग्रंथों में किया है। कई चीनी यात्रियों के यात्रा-विवरण भी इस संबंध में बहुत महत्व रखते हैं। यहाँ हम उनमें से कुछ मुख्य लेखकों का ही परिचय कराने हैं।

**मेगास्थनीज**—सिहंदर की मृत्यु के लगभग बीस वर्ष बाद मीगस्थी और मिथ के राजाओं ने मौर्य साम्राज्य के दरबार में अपने अपने राजदूत भेजे थे। इन राजदूतों ने भारतवर्ष का जो वर्णन किया है, उसका कुछ भाग बहुत से यूनानी और रोमन लेखकों के ग्रंथों में उद्धृत किया हुआ मिलता है। इन राजदूतों में

मीरिया के राजा मेल्पूकम के राजदूत मेगास्थिनीज का नाम विशेष-तः उल्लेखनीय है। मेगास्थिनीज कई वर्षों तक चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में था। वहाँ रहकर उसने अपना समय भारत की तत्कालीन राजनीतिक तथा सामाजिक दशा का ऐतिहासिक विवरण लिखने में लगाया था। उसके वर्णन का केवल कुछ ही अंश—और वह भी दूसरों के ग्रंथों में—मिलता है।

परिप्ल—ईसाई दुसरी शताब्दी में एरियन नाम का एक यूनानी-रोमन अफसर हो गया है। उसने भारतवर्ष का तथा मिहेंद्र के आक्रमण का बहुत अच्छा वर्णन किया है। उसने अपना इतिहास लिखने में मिहेंद्र के उस राज-कर्मचारियों के निम्ने हुए वर्णनों और यूनानी राजदूतों के लेखों से बहुत कुछ सहायता ली है। ई० पू० चौथी शताब्दी का इतिहास जानने के लिये एरियन के ग्रंथ बहुत महत्व के हैं।

फादियान और ह्येनत्सांग—फादियान ई० चौथी शताब्दी के प्रारंभ में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय और ह्येनत्सांग ई० पाँचवीं शताब्दी में हर्ष के समय चीन में भारतवर्ष में यात्रा करने के लिये आये थे। उन्होंने तत्कालीन भारत का जो कुछ वर्णन

---

\* यूनानी और रोमन इतिहास-लेखकों तथा दक्षिण में भारत का जो कुछ वर्णन बड़े बड़े विद्वानों, जैसे एडरल्ट के नि० मैक रिडिन ने निम्नलिखित छः ग्रंथों में बहुत बड़ा है—(1) Ktesias. (2) Indika of Megasthenes and Arrian. (3) Periplus of the Erythraean Sea. (4) Ptolemy's Geography (5) Alexander's Invasion. (6) Ancient India, as described by other Classical Writers.



किया है, वह तो किया ही है; माय ही अपने से पूर्व काल की भी बहुत सी बातों का उद्भव किया है, जिनमें बौद्ध काल का बहुत सा इतिहास विदित होता है।

### ( ३ ) शिलालेख तथा सिक्के आदि

शिलालेख—बौद्ध काल का इतिहास जानने के लिये शिलालेखों से भी बहुत सहायता मिलती है। यदि अनेक राजाओं के शिलालेख अब तक सुगमिल न रहते, तो बहुत से राजाओं के नामों और वशों का पता भी हम लोगों को न लगता। इनमें से सब से अधिक महत्व के शिलालेख मौर्य सम्राट् अशोक के हैं। अशोक का अधिकतर इतिहास उसके शिलालेखों से ही जाना जाता है। कुल मिलाकर उसके तीस से अधिक शिलालेख हैं, जो पट्टणों, गुफाओं की दीवारों और स्तम्भों पर खुदे हुए मिलने हैं। अशोक के शिलालेख भारतवर्ष के भिन्न भिन्न भागों में, हिमालय से लेकर मैसूर तक और बंगाल की खाड़ी से लेकर अरब सागर तक, पाये जाते हैं। अशोक के पहले का कोई शिलालेख अब तक नहीं मिला है। अशोक के बाद बौद्ध काल के असंख्य शिलालेख भारतवर्ष में चारों ओर पाये गये हैं, जिनका उद्देश्य यथा स्थान किया जायगा।

सिक्के—बौद्ध काल के इतिहास की रोज में सिकों का महत्व अन्य ऐतिहासिक सामग्री से कुछ कम नहीं है। सिकों की सहायता से बौद्ध काल के कई अधिकारान्ध्र भागों का क्रमबद्ध और विस्तृत इतिहास लिखा जा सकता है। प्राचीन भारतवर्ष के दूसरी (ईसो-

ईश्वर) तथा पार्थिव ( ईश्वर-पार्थिव ) राजाओं का इतिहास तो केवल गिबो के ही आधार पर प्रस्तुत किया गया है ।

प्राचीन बौद्ध समाजों के भगवद्गुरु और मूर्तिपूजा—प्राचीन बौद्ध धर्मों के भगवद्गुरुओं में बौद्ध धर्म का राजनीतिक इतिहास जानने में कुछ विशेष महत्त्व नहीं मिलता, पर हाँ, उनके उस समय की गृह-निर्माण-कला का बहुत कुछ ज्ञान अवरय लगता है । इसी प्रकार बौद्ध धर्म की मूर्तिपूजा देखने में उस समय की शिल्प-कला, समाज तथा धर्म का भी कुछ कुछ ज्ञान अवरय हो जाता है ।

इसी सामग्री के आधार पर आगे के अध्यायों में बौद्ध धर्म का राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक तथा शिल्प-कला संबंधी इतिहास पाठकों के सामने रखने का प्रयत्न किया जाएगा ।

## दूसरा अध्याय

### बुद्ध के जन्म-समय में भारत की दशा

सम्राट के इतिहास में ई० पू० छठी शताब्दी विर-म्बरणीय है। इसी शताब्दी के लगभग भारत में भगवान् बुद्ध का, चीन में कन्फ्यूसी का और ईरान में जस्तासुर का जन्म हुआ था। इस समय सब ओर लोगों के मन में नई नई शक्तियाँ और नये नये विचार उभर रहे थे। उन दिना प्रचलित धर्म के प्रति अमनोप और अविश्वास फैला हुआ था। लोग नये नये भावों और विचारों में प्रेरित होकर पवित्रता के लिये लाचार्य हो रहे थे। वे एक नये पुनरुत्थान की प्रतीक्षा कर रहे थे, जो अपने गम्भीर विचारों में उनकी शक्तियों का समन्वय करता, जो अपने सदुद्देश्य में उनकी आत्मिक शक्ति का शान करता और जो उनके सामने एक ईश्वर आदर्श स्थापित उनके जीवन को उन्नत करता। जब समाज की ऐसी दशा होती है, तब हिन्दी महापुरुष का जन्म या अवतार आवश्यक होता है। वह समाज के सामने अपने जीवन का आदर्श स्थापित करे। इस समय के लोगों की आत्माएँ और अभिलाषाएँ उन्मत्त प्रतीतिवित्त होती हैं। वह अपने समय के लोगों का मूर्तिमान् आदर्श होता है। अतएव हिन्दी महापुरुष के जीवन और मरण की हीन हीन समझने के लिये यह आवश्यक है कि पहले हम सत्त्वार्थ सत्त्वार्थ, सामाजिक और आत्मिक दशा में पूर्ण

तरह परिचित हो जायें। किसी महापुरुष को उसके समय से अलग करके देखिये, तो उसका जीवन बहुत कुछ अर्थ-रहित मानूम पड़ेगा और उसके काम निरर्थक प्रतीत होंगे। इसलिये यदि हम भगवान् बुद्ध के जीवन को ठीक ठीक समझना चाहते हों, तो यह आवश्यक है कि हम अच्छी तरह से यह जान लें कि उनके समय में भारत की क्या दशा थी। इसी उद्देश्य से यहाँ बुद्ध के जन्म-समय की भारत की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक दशा का कुछ दिग्दर्शन कराया जाना है।

### राजनीतिक दशा

उस समय भारतवर्ष तीन बड़े बड़े भागों में बँटा हुआ था। इनमें में बीचवाला भाग “मगधदेश” (मध्य देश) कहलाता था। जानकों में अनेक स्थानों में “मगधदेश” का उल्लेख आया है; पर इन उल्लेखों से यह पता नहीं लगता कि मध्य देश कहाँ से कहाँ तक था। हाँ, मनुस्मृति अध्याय २, श्लो० २१ में निश्चित रूप से मध्य देश की सीमा लिखी हुई है। उसमें लिखा है—  
 “हिमालय और विन्ध्याचल के बीच तथा सरस्वती नदी के पूर्व और प्रयाग के पश्चिम में जो देश है, उसे मध्य देश कहते हैं”।  
 इस मध्य देश के उत्तर का भाग उत्तरापथ तथा दक्षिण का भाग दक्षिणापथ कहलाता था। इस प्रकार कुल देश तीन बड़े बड़े प्रदेशों में बँटा हुआ था। अब आइये, देखें कि उस समय की राजनीतिक दशा कैसी थी।

उस समय देश में सोलह राज्य (षोडश महाजनपद) थे,

जिनके नाम नीचे लिखे जाते हैं—

- |                                |                              |
|--------------------------------|------------------------------|
| (१) अंग (अंग-राज्य)            | (९) कुरु (कुरु-राज्य)        |
| (२) मगध (मगध-राज्य)            | (१०) पंचाल (पंचाल-राज्य)     |
| (३) काशी (काशी-राज्य)          | (११) मच्छा (मच्छा-राज्य)     |
| (४) कोसला (कोसल-राज्य)         | (१२) सूरसेना (सूरसेन-राज्य)  |
| (५) वज्जी ( वृजियों का राज्य ) | (१३) अस्मका (अस्मक-राज्य)    |
| (६) मल्ल (मल्लों का राज्य)     | (१४) अवन्ती (अवन्ति-राज्य)   |
| (७) चेत्ती (चेदि-राज्य)        | (१५) गन्धारा (गान्धार-राज्य) |
| (८) वंसा (वन्स-राज्य)          | (१६) कम्बोज (कम्बोज-राज्य)   |

ऊपर जिन राज्यों की सूची दी गई है, उनके संबंधमें ध्यान देने लायक पहली बात यह है कि वे देशों के नाम नहीं, बल्कि जातियों के नाम हैं। बाद को इन्हीं जातियों के नाम पर देशों का नाम भी पड़ गया था। दूसरी बात यह है कि इनमें से “वज्जी” और “मल्ल” ये दोनों जाति के नाम नहीं, बल्कि कुल के नाम थे। तीसरी बात यह है कि इनके ऊपर, या इनसे बढ़कर, कोई शक्ति ऐसी न थी जो इन पर अपना आतंक जमा सकती या इन को एक साम्राज्य के अन्दर ला सकती। इनमें से प्रत्येक का वर्णन नीचे दिया जाता है—

( १ ) अंगों का राज्य—अंग-राज्य, मगध-राज्य के बिलकुल बगल में था। दोनों राज्यों के बीच केवल एक नदी का अन्तर था। इस नदी का नाम “चंपा” था। इसी नदी पर चंपा नगरी बसी हुई थी, जो अंग-राज्य की राजधानी थी। प्राचीन चंपा नगरी वर्तमान भागलपुर के निकट थी। अंग पहले स्वतंत्र राज्य था;

पर बाद की वह मगध की अधीनता में चला गया था ।

( २ ) मगधों का राज्य—मगध-राज्य वर्तमान बिहार के स्थान पर था । इसकी उत्तरी सीमा कदाचिन् गंगा नदी, पूर्वी सीमा बरा नदी, दक्षिणी सीमा विन्ध्य पर्वत और पश्चिमी सीमा सोन नदी थी । इसकी राजधानी राजगृह ( वर्तमान राजगिर ) थी । राजगृह के दो भाग थे । इसका प्राचीन भाग गिरिप्रज कहलाता था । गिरिप्रज एक पहाड़ी पर बसा हुआ था । बाद की राजा विविमार ने, जो बुद्ध भगवान् के समकालीन थे, इस प्राचीन नगर को उखाड़कर एक नये राजगृह की नींव डाली । नवीन राजगृह पहाड़ी के नीचे बसाया गया । बुद्ध के निर्वाण के बाद मगध की राजधानी राजगृह से हटाकर पाटलिपुत्र में स्थापित की गई थी ।

( ३ ) कारी का राज्य—बुद्ध के जन्म से पहले “कासी राष्ट्र” ( कारी-राष्ट्र ) बिल्कुल स्वतंत्र था; पर बुद्ध-जन्म के बाद यह राज्य कोरान-राज्य में मिला लिया गया था । कारी-राष्ट्र की राजधानी कारासमी (वन्गरम) थी । कारी उस समय नगर का नाम नहीं, बल्कि राज्य का नाम था । जानघों में लिखा है कि उन समय इस राज्य का विस्तार दो हजार वर्ग मील था ।

( ४ ) कोरानों का राज्य—कोरान-राज्य की राजधानी “मावधी” ( मावसी ) थी । प्राचीन मावसी नगर वर्तमान मोरा और बहराइच जिलों की सीमा पर मधेय मधेय नामक स्थान के स्थान पर था । कोरान राज्य का एक दूसरा प्रधान नगर माधेंज था । जानघों में पता लगता है कि बुद्ध के कुछ पहले कोरान की राजधानी माधेंज हो गई थी ।

( ५ ) वृजियों का राज्य—वृजो-राज्य में प्रायः आठ स्रनंर राज-कुल मिले हुए थे । उनमें से “लिन्यवि” और “विदेह” राज-कुलों की प्रधानता थी। वृजियों की राजधानी “वैसालि” (वैशाली) थी, जी वर्तमान मुझफरपुर जिले के बसाढ़ नामक स्थान पर थी।

( ६ ) मल्लों का राज्य—चीनी यात्री ह्वेनत्सांग के अनुसार यह पहाड़ी राज्य शाक्य-राज्य के पूर्व और वृजो-राज्य के उत्तर में था । पर कुछ लोगों का मत है कि यह राज्य वृजो के पूर्व और शाक्यों के दक्षिण में था ।

( ७ ) चेदियों का राज्य—जातकों में “चेतिय-रट्ट” या “चेत-रट्ट” का उल्लेख आया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि “चेतिय” या “चेत” संस्कृत के “चैय” या “चेदि” का अपभ्रंश है। चेदि-राज्य मोटे तौर पर वर्तमान बुन्देलखण्ड के स्थान पर था ।

( ८ ) वत्सों का राज्य—वत्स-राज्य की राजधानी कौशांबी थी । प्राचीन कौशांबी नगरी प्रयाग से प्रायः ३० मील दूर दक्षिण की ओर यमुना नदी के किनारे पर वर्तमान कोमम ग्राम के पास थी । यह राज्य अवंती राज्य के उत्तर में था ।

( ९ ) कुरुओं का राज्य—कुरु-राज्य की राजधानी दिंडी के पास “ईदपट्ट” ( ईद्रप्रस्थ ) नगर में थी । इस राज्य के पूर्व में पंचाल-राज्य और दक्षिण में मगध-राज्य था । इस राज्य के उत्तर-कुरु और दक्षिण-कुरु नाम के दो विभाग थे । कुरु-राज्य का फैलाव २००० वर्ग मील था ।

( १० ) पंचालों का राज्य—पंचाल-राज्य भी दो थे—एक उत्तर-पंचाल और दूसरा दक्षिण-पंचाल । पंचाल-राज्य कुरु राज्य के पूर्व में पहाड़ और गंगा के बीच में था । उत्तरी पंचाल की

राजधानी “कंपिह” ( कांपित्य ) और दक्षिणी पंचाल की राजधानी कन्नौज थी। प्राचीन कांपित्य नगर कदाचिन् गंगा के किनारे वर्तमान बदाऊँ और फर्रुखाबाद के बीच में था ।

(११) मत्स्यों का राज्य—महाभारत के समय में मत्स्य राजा विराट के अधिकार में था । वर्तमान अलवर, जयपुर और भरतपुर के कुछ हिस्से प्राचीन मत्स्य-राज्य में थे । राजा विराट की राजधानी जयपुर रियासत में कदाचिन् वैराट नामक स्थान में थी ।

(१२) शूरसेनों का राज्य—शूरसेन-राज्य की राजधानी एमुना नदी के किनारे पर प्राचीन “मथुरा” (मथुरा) नगरी थी । मनुस्मृति ( अध्या० २, श्लो० १९ ) में लिखा है—“कुम्भसेन और मत्स्य देश तथा पंचाल और शूरसेन सब मिनकर ब्रह्मर्षि-देश कहलाते हैं ।”

(१३) अशमकों का राज्य—अशमक-राज्य गोदावरी नदी के किनारे पर था और इसकी राजधानी पोंतन या पोंतली थी ।

(१४) अवन्तियों का राज्य—अवन्ति-राज्य के दो विभाग थे । इसका उत्तरी भाग केवल “अवन्ति” कहलाता था और इसकी राजधानी उज्जयिनी थी; और इसका दक्षिणी भाग अवन्ति-रविणपथ कहलाता था और इसकी राजधानी माहिष्मती ( माहिष्मती ) थी ।

(१५) गंधारों का राज्य—गंधार-राज्य में पश्चिमी पंजाब और पूर्वी अफगानिस्तान शामिल था । इसकी राजधानी तक्षशिला ( तक्षशिला ) थी । प्राचीन तक्षशिला नगरी आजकल के खैरतमंदी जिले के सराय काला नामक स्टेशन के पास थी ।



(१६) कंबोजों का राज्य—प्राचीन कंबोज-राज्य कहाँ था, इसका निश्चय अभी तक नहीं हुआ है। एक मत यह है कि उत्तरी हिमालय के लोग कंबोज थे। दूसरा मत यह है कि तिब्बत के लोग कंबोज थे। पर बुद्ध-जन्म के समय वे कदाचिन् मिथ नदी के बिलकुल उत्तर-पश्चिम में बसे हुए थे। प्राचीन ईरानी शिलालेखों में जिन “कंबुजिय” लोगों का उल्लेख आया है, वे कदाचिन् यही “कंबोज” थे।

जिस समय का हाल हम लिख रहे हैं, उस समय अर्यान् ई० पू० छठी शताब्दी में आर्यावर्त इन्हीं छोटे छोटे स्वतंत्र राज्यों में बँटा हुआ था। ये अक्सर आपस में लड़ा भी करते थे। उस समय कोई ऐसा साम्राज्य या बड़ा राज्य न था, जो इन सब को अपने अधिकार में रखता। लोगों में राजनीतिक स्वतंत्रता का भाव प्रबलता के साथ पैला हुआ था। कोई उनकी स्वतंत्रता में बाधा डालनेवाला न था। प्रत्येक गाँव और प्रत्येक नगर अपना प्रबंध अपने आप करता था। सारांश यह है कि उस समय सब ग्राम और सब नगर एक तरह के छोटे मोटे प्रजातंत्र राज्य थे। उस समय उत्तरी भारत में कई प्रजातंत्र राज्य भी थे, जिनमें से मुख्य ये थे—(१) शाक्यों का प्रजातंत्र राज्य, (२) मगधों का प्रजातंत्र राज्य; (३) कुलियों का प्रजातंत्र राज्य, (४) कालामों का प्रजातंत्र राज्य; (५) कोलियों का प्रजातंत्र राज्य; (६) मल्लों का प्रजातंत्र राज्य; (७) मौर्यों का प्रजातंत्र राज्य; (८) विदेहों का प्रजातंत्र राज्य; और (९) लिच्छवियों का प्रजातंत्र राज्य। इन प्रजातंत्र राज्यों में सब से अधिक प्रमुख शाक्यों, विदेहों और लिच्छवियों का था। बुद्ध के जीवन पर इन

प्रजातंत्र राज्यों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था। गौतम बुद्ध शाक्यों के प्रजातन्त्र-राज्य में पैदा हुए थे। उनके पिता शुद्धोदन इसी प्रजातंत्र राज्य के एक समापति या प्रधान थे। गौतम बुद्ध ने न्यायपूर्ण विचार, संघटन शक्ति और एकता की शिक्षा यहीं प्राप्त की थी। बुद्ध भगवान् ने अपने भिक्षु-संघ का संघटन भी इन्हीं प्रजातंत्र राज्यों के आदर्श पर किया था। इन प्रजातंत्र राज्यों का सविस्तर वर्णन आगे चलकर किया जायगा।

### सामाजिक दशा

बुद्ध के पहले ही आयों में जाति-भेद बहुत बढ़ गया था। हमारे यहाँ आजकल जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र होते हैं, वैसे ही चार वर्ण उस समय भी थे। इन चारों वर्णों में, राज्ञ देविदस के अनुसार, क्षत्रिय लोग सब से श्रेष्ठ थे और उन्हें का मान सब से अधिक था। उनके बाद ब्राह्मणों का दरजा था; और ब्राह्मणों के बाद वैश्यों तथा शूद्रों का। समाज में क्षत्रियों की मर्यादा सब से बड़ी पड़ी थी। इस मत की पुष्टि में राज्ञ देविदस बौद्ध और जैन ग्रंथों का प्रमाण देते हैं। वे ब्राह्मणों के लिखे हुए ग्रंथों को प्रामाणिक नहीं मानते; क्योंकि उनके मन में ब्राह्मणों ने अपने स्वार्थ और प्रशंसा के लिये अपने ही गुण गाये हैं और अपने को चारों वर्णों में सब से श्रेष्ठ बतलाया है। अतएव राज्ञ देविदस का मत है कि वर्ण-व्यवस्था के बारे में

• राज्ञ देविदस इव "इन्दिय इन्डिया" (Buddhist India) १०  
२२, २०, ८०

जो कुछ मात्स्यों के ग्रंथों में लिखा है, वह कदापि माना नहीं जा सकता ।

मान्य होता है कि छठी या सातवीं शताब्दी में मात्स्यों और क्षत्रियों के बीच बहुत द्वेष उत्पन्न हो गया था । वे एक दूसरे से आगे बढ़ जाना चाहते थे । इसी कारण बौद्ध तथा जैन ग्रंथों में, जो मात्स्यों के विरुद्ध और क्षत्रियों के पक्ष में थे, मात्स्यों का गान क्षत्रियों के नीचे रखा गया है और उनका उल्लेख अपमान तथा नीचता-सूचक शब्दों में किया गया है । यह भी मान्य होता है कि उस समय क्षत्रिय लोग विद्या, ज्ञान और तप में मात्स्यों का मुकाबला करने लगे थे और उनसे आगे निकल जाना चाहते थे । क्षत्रियों की सुनना में मात्स्यों की हीनता दिखाने के लिये जैन कल्प-सूत्र में लिखा है कि अर्हत इत्यादि नीच जाति का मात्स्य जाति में कभी जन्म ग्रहण नहीं कर सकते । अर्हत, तीर्थंकर या बुद्ध का अवतार महा क्षत्रिय वंश में हुआ है और होगा । ऐसी अवस्था में बौद्ध तथा जैन ग्रंथों को विलक्षण मध्यमान लेना उचित नहीं मान्य होता ।

इन बातों वगैरह को छोड़कर और बहुत भी ऐसी बातियाँ हैं जो भी पता जानकों में लगती हैं, जो शूद्रों में भी हीन समझी जाती थीं । इनको "हीन-जातियों" कहते थे । जैसे लोग बह्वर्णियों, नरों, कुम्हार, जुताई, चमार इत्यादि थे । जानकों में पता लगता है कि उस समय अशून्य जातियाँ भी थीं, और उनके साथ कुछ बराब्र दिया जाता था । "धिन-संनूत जातयः" में लिखा है कि जब मात्स्य और वैश्य वंश की दो श्रियाँ एक नगर के पट्टण में निवस रही थीं, तब उन्हें हमले में दो बाँकल दिव्यार्थ

पड़े। चांडाल के दर्शन को उन्होंने बड़ा अशुभ समझा और वे पर लौट गईं। पर जाकर उन्होंने उस दर्शन के पाप को मिटाने के लिये अपनी आँखें धो डालीं। इसके बाद लोगों ने उन दोनों चांडालों को खूब पीटा और उनकी मृग दुर्गति की। “मानंग जातक” तथा “सत्तपम्भ जातक” में भी पता लगता है कि अछूत जातियों के साथ अरुद्धा बर्ताव नहीं किया जाता था। बुद्ध के दयार्थ हृदय में इन सामाजिक अन्याय के प्रति अवश्य घृणा का भाव उपन्न हुआ होगा। इसी अन्याय को दूर करने के लिये उन्होंने ऊँच नीच के भेद को बिलकुल त्याग दिया; और अपने धर्म तथा संप्रदाय द्वार सब वर्गों तथा सब जातियों के लिये समान रूप में खोल दिया।

जातकों में यह भी पता लगता है कि बौद्ध काल के पूर्व एक वर्ग दूसरे वर्ग के साथ विवाह और भोजन कर सकता था। इस तरह के विवाह में जो मंतान उपन्न होती थी, वह अपने पिता के वर्ग की सम्पत्ति जाती थी। जातकों में ही यह भी पता लगता है कि दूसरे वर्ग में विवाह करने की अपेक्षा अपने वर्ग में विवाह करना अरुद्धा समझा जाता था। पर एक ही गोत्र में विवाह करना निषिद्ध माना जाता था क।

जातकों में यह भी प्रकट होता है कि बौद्ध काल के पहले सब वर्गों और जातियों के मनुष्य अपने में इतर वर्ग और इतर जाति का भी काम करने लगे थे। माझरा लोग व्यापार भी करते थे। वे कपड़ा बुनते हुए, पहिये आदि बनाते हुए और

• देखो—“अपमम जातक,” “दुममममम जातक” और “अपमम जातक”।

खेती-बारी करते हुए लिखे गये हैं। चत्रिय लोग भी व्यापार करते थे। एक चत्रिय के बारे में लिखा है कि उसने कुम्हार, माली और पाचक के काम किये थे। तो भी इन लोगों की जातियों में कोई अंतर नहीं हुआ था। यही उस समय की सामाजिक दशा थी। अब तत्कालीन धार्मिक दशा का वर्णन किया जाता है।

### धार्मिक दशा

यज्ञ और वलिदान—बुद्ध के जन्म के समय धर्म की बड़ी बुरी दशा थी। उस समय पशु-यज्ञ पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ था। निरपराध, दीन, असहाय पशुओं के रुधिर से यज्ञ-बेदी लाल की जाती थी। यह पशु-बध इमलिये किया जाता था कि जिममें यज्ञमान की मनोकामना पूरी हो। पुरोहित लोग यज्ञमानों से यज्ञ कराने के लिये सदैव तत्पर रहते थे। यही उनकी जीविका का मुख्य द्वार था। बिना वलिदान के यज्ञ अपूर्ण और निष्फल समझा जाता था, अतएव प्राद्वणों को इन यज्ञों और वलिदानों से बड़ा लाभ होता था। जन्म से लेकर मरण पर्यन्त प्रत्येक संस्कार के साथ यज्ञ होना अनिवार्य था। कर्म-कांड का पूर्ण रूप से और सार्वभौमिक प्रसार था। समाज वाष्पा-रुम्बर में फँसा हुआ था; पर उसकी आत्मा घोर अंधकार में पड़ी हुई प्रकारा के लिये पुकार रही थी। किन्तु कोई यह पुकार सुनने वाला न था। समाज पर इस यज्ञ-प्रथा का बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ना था। एक तो यज्ञों में जो पशु-बध होता था, उससे मनुष्यों के हृदय कठोर और निर्दय होने जा रहे थे और

उनमें से जीवन के महत्व का भाव घटता जा रहा था—लोग आत्मिक जीवन का गौरव भूलने लगे थे । इस यज्ञ-प्रथा का दूसरा बुरा प्रभाव यह था कि मनुष्यों में जड़ पदार्थ की महिमा बहुत बढ़ गई थी । लोग बाह्य बातों को ही अपने जीवन में सब से श्रेष्ठ स्थान देने थे । यज्ञ करना और कराना ही सब से बड़ा धर्म और सब से बड़ा कार्य गिना जाने लगा था । आत्मा की आत्मिक उन्नति की ओर लोग बिल्कुल से देखते थे । लोगों में यह विश्वास पैदा हुआ था कि यज्ञ करने से पुराने किये हुए बुरे कर्मों का दोष नष्ट हो जाता है । ऐसी हालत में समाज में पवित्र आचरण और आत्मिक उन्नति का गौरव भला बच रह सकता था !

इसके अनिश्चित यज्ञ करने में बहुत धन व्यय होता था । ब्राह्मणों को बड़ी बड़ी दक्षिणाएँ दी जाती थीं । बहुमूल्य वस्त्र, गोएँ, घोड़े और सुवर्ण इत्यादि दक्षिणा के तौर पर दिये जाते थे । कुछ यज्ञ भी ऐसे थे, जिनमें साल साल भर लग जाता था और जिनमें सहस्रों ब्राह्मणों की आवश्यकता होती थी । अतएव यज्ञ करना और उसके द्वारा यश प्राप्त करना हर किसी का काम न था । केवल धनवान् ही यज्ञ करने का साहस कर सकते थे । इसलिये विचार-प्रवाह धर्म-कांड के विरुद्ध बढ़ने लगा और लोग आत्मिक शान्ति प्राप्त करने के लिये नये उपाय सोचने लगे ।

हठ योग और तपस्या—आत्मिक शान्ति प्राप्त करने के उपायों में से एक उपाय हठ योग भी था । लोगों का यह विश्वास था कि कठिन तपस्या करने में हमें अद्वि-सिद्धि प्राप्त हो सकती है । आत्मिक उन्नति करने अथवा प्रकृति पर विजय पाने के लिये

लोग अनेक प्रकार की तपस्याओं के द्वारा अपनी काया को बट पट्टेवाने थे । इन्द्रियों पर विजय पाने के लिये पंचाग्नि तापना, एक ढोंग से गड़े होकर और एक हाथ उठाकर तपस्या करना, महीनों तक कठिन से कठिन उपवास करना और इसी तरह की दूसरी तपस्याएँ आवश्यक समझी जाती थीं । सरदी और गरमी का कुछ खयाल न करके ये लोग अपने उद्देश्य की मिट्टि में दत्त-विण रहने थे । इन लोगों को कठिन से कठिन शारीरिक दुःख से भी डेरा न होना था । इनका अभ्यास इतना बढ़ा चढ़ा होना था कि इनमें से कुछ तपस्वी अपने मिर तथा दाढ़ी मूँछ के बालों को हाथ से तोच तोचकर फेंक देने थे । लोगों में यह विश्वास बहुत थोड़े के साथ फैला हुआ था कि यदि इस तरह की तपस्या पूर्ण रूप से की जाय, तो मनुष्य सारे विष का भी साध्राण्य पा सकता है । बुद्ध भगवान् के जन्म समय में पूर्वोक्त तपस्वी तप की महिमा मूल फैली हुई थी । भगवान् बुद्धदेव ने स्वयं लगभग दस वर्षों तक इसी हठयोग का कठिन तप धारण किया था । पर जब उनसे इसकी निम्मारता का विश्वास हो गया, तब वे इसे छोड़कर सत्य ज्ञान की रात्र में चले पड़े थे ।

ज्ञान माँ और दार्शनिक विचार—पर आभिहित उन्नति चाहनेवाले गुरुओं की आत्मा को न तो कर्म-कण्ड से ही शान्ति मिलेगी और न हठ योग या तपस्या से ही परमानन्द की प्राप्ति हुई । ऐसे लोगों का समाज का कलावटी और शूद्र जीवन बट्टे देने लगा । मनु के इन अनुयायियों ने अपने पर-स्वार्थ और इस क्षम न समाज से हुई मोड़-दर बन की ओर प्रवृत्त किया । बुद्ध भगवान् के प्रवचन लेने के पहले, और उनके समय में भी,

बहुत से ब्रिह्म, गण्डु, मन्त्रापी, वैष्णव, परिब्राजक आदि एक जगह में दूसरी जगह विचरते थे। लोगों में इनका बहुत अधिक मान था। जब समय के लोग आनिष्ठ-मैत्रा करना बहुत अच्छी तरह जानते थे। क्योंकि इन परिब्राजकों के छहमे के लिये मन्त्र-आदिक तथा धनी पुण्य वर्गी के बाहर अच्छे अच्छे आश्रम बनवा देने थे। बहुत से स्थानों में उन आश्रमों का प्रबंध पंचायती पद्धति में भी होता था। विचरते हुए परिब्राजक इन आश्रमों में आ छहमे में। लोग उनके भोजन आदि का प्रबंध पूर्ण रूप में कर देते थे। नियम प्रति लोग इन परिब्राजकों के दर्शन करने के लिये बहाँ जाते थे और दारानिक तथा धार्मिक विषयों पर इनके विचार सुनते थे। यदि बहाँ उम्मी समय और भी कोई परिब्राजक छहरे होते थे, तो प्रायः साम्राज्य भी दिक् जाता था। ये पूर्ण अन्तर्गता के साथ अपने विचार प्रकट करते थे। मी और पुनः होने परिब्राजिक और परिब्राजक हो सकते थे। प्रचलित मन्त्रापी के प्रति इन लोगों में कोई विशेष प्रेम न था। उनके से बहुतों ने तो प्रचलित धर्म से अमंतुष्ट होकर ही पर-बाह्य छोड़कर मन्त्राभासम महसूस किया था, इसलिये ये प्रचलित धर्म का प्रतिपादन और समर्थन न करते थे। प्रचलित धर्म और प्रचलित प्रणाली की शुद्धियों से अमंतुष्ट होने के कारण ही ये लोग थोड़े साफ़ इन मन्त्रापी की गुरादियाँ प्रकट करते थे और महादीन समाज की गुंते तौर पर समालोचना करते थे। वे सर्व साधारण में प्रचलित धर्म की और अभिज्ञा तथा अमंतुष्ट उत्पन्न कर रहे थे और उनके विधायकों की जड़ धीरे धीरे कमजोर करने जाते थे। इस प्रकार प्रचलित धर्म की जड़



लोग अनेक प्रकार की तपस्याओं के द्वारा अपनी काया को कष्ट पहुँचाने थे । इन्द्रियों पर विजय पाने के लिये पंचाग्नि तापना, एक टोंग से खड़े होकर और एक हाथ उठाकर तपस्या करना, महीनों तक कठिन से कठिन उपवास करना और इसी तरह की दूसरी तपस्याएँ आवश्यक समझी जाती थीं । सरदी और गर्मी का कुछ खयाल न करके ये लोग अपने उद्देश्य की सिद्धि में दम-चित्त रहते थे । इन लोगों को कठिन से कठिन शारीरिक दुःख से भी डेरा न होना था । इनका अभ्यास इतना बढ़ा चढ़ा होता था कि इनमें से कुछ तपस्वी अपने मिर तथा दाढ़ी मूँछ के बालों को हाथ से मोच मोचकर फेंक देते थे । लोगों में यह विश्वास बहुत ज़ोरों के साथ फैला हुआ था कि यदि हम तरह की तपस्या पूर्ण रूप से की जाय, तो मनुष्य मारे विष का भी माध्वाय्य हो सकता है । बुद्ध भगवान् के जन्म समय में पूर्वोक्त तामसी तप की महिमा गूँघ फैली हुई थी । भगवान् बुद्धदेव ने स्वयं लगभग छः वर्षों तक इसी हठयोग का कठिन व्रत धारण किया था । पर जब उनको इसकी निस्सारता का विश्वास हो गया, तब वे इसे छोड़कर सत्य ज्ञान की खोज में चले पड़े थे ।

ज्ञान माँ और दार्शनिक विचार—पर आत्मिक उन्नति प्राप्त करनेवाले पुरुषों की आत्मा को न तो कर्म-कारण से ही शान्ति मिलती और न हठ योग या तपस्या से ही परमानन्द की प्राप्ति हुई । ऐसे लोगों को समाज का बनावटी और शूरा जीवन कष्ट देने लगा । मय के इन अन्वेषकों ने अपने घर-बार और इस असत्य संसार में मुँह मोड़कर वन की ओर प्रस्थान किया । बुद्ध भगवान् के अवतार लेने के पहले, और उनके समय में भी,

बहुत से भिक्षु, माधु, संन्यासी, वैद्यानस, परित्राजक आदि एक जगह से दूसरी जगह विचरते थे। लोगों में इनका बहुत अधिक मान था। उस समय के लोग आनिध्य-सेवा करना बहुत अच्छी तरह जानते थे। अतएव इन परित्राजकों के ठहरने के लिये राजे-महाराजे तथा धनी पुरुष घसी के बाहर अच्छे अच्छे आश्रम बनवा देते थे। बहुत से स्थानों में उन आश्रमों का प्रबंध पंचायती चंदे में भी होना था। विचरते हुए परित्राजक इन आश्रमों में आ ठहरते थे। लोग उनके भोजन आदि का प्रबंध पूर्ण रूप में कर देते थे। निम्न प्रति लोग इन परित्राजकों के दर्शन करने के लिये वहाँ जाने थे और दारान्तिक तथा धार्मिक विषयों पर इनके विचार सुनते थे। यदि वहाँ उसी समय और भी कोई परित्राजक ठहरें होते थे, तो प्रायः शास्त्रार्थ भी छिड़ जाता था। वे पूर्ण स्वतंत्रता के साथ अपने विचार प्रकट करते थे। स्त्री और पुरुष दोनों परित्राजिका और परित्राजक हो सकते थे। प्रचलित संस्थाओं के प्रति इन लोगों में कोई विशेष प्रेम न था। उनमें से बहुतों ने तो प्रचलित धर्म में अमंतुष्ट होकर ही पर-बाड़ छोड़कर संन्यासाश्रम ग्रहण किया था; इसलिये वे प्रचलित धर्म का प्रतिपादन और समर्थन न करने थे। प्रचलित धर्म और प्रचलित प्रणाली की शुद्धियों में अमंतुष्ट होने के कारण ही वे लोग धार्मिक तरफ इन संस्थाओं की घुण्डियाँ प्रकट करते थे और सत्कालीन समाज की मुले तौर पर समालोचना करते थे। वे सर्व साधारण में प्रचलित धर्म की ओर अश्रद्धा तथा अमंताप उत्पन्न कर रहे थे और उनके विश्वासों की जड़ धीरे धीरे कमजोर करने जाते थे। इस प्रकार प्रचलित धर्म की जड़

दिलने लगी । इन परित्राजकों ने धीरे धीरे नये विचारों का बीज बोने के लिये क्षेत्र तैयार कर दिया था । पर अभी बीज बोने वाले की कमी थी; और लोग कमी की प्रतीक्षा कर रहे थे ।

बुद्ध-जन्म के पहले प्राचीन उपनिषद् भी लिखे जा चुके थे । उपनिषदों के बनानेवालों ने यह विचारने का प्रयत्न किया था कि सब जीवित तथा निर्जीव वस्तुएँ एक ही सर्वव्यापी ईश्वर से उत्पन्न हुई हैं और वे सब एक ही सर्वव्यापी आत्मा के अंश हैं । इन उपनिषदों में कर्म की अपेक्षा ज्ञान की प्रधानता दिखाई गई थी । उनमें ज्ञान के द्वारा अज्ञान का नाश और मोह से निवृत्ति बतलाई गई थी । उनमें पुनर्जन्म का भी अनुमान किया गया था । अज्ञान, जीव के सुख-दुःख के कारण, परमात्मा की सत्ता और आत्मा-परमात्मा का मंचप आदि सब विषयों पर बहुत ही बुद्धिमत्ता के साथ गूढ़ विचार किया गया था । धीरे धीरे उपनिषदों का अनुशीलन करनेवालों की मत्स्या बढ़ने लगी । उनमें प्रतिपादित विचारों का अध्ययन और मनन होने लगा । किसी ने उपनिषदों में अद्वैतवाद पाया, तो किसी ने उनमें से विशिष्टाद्वैत निकाला । इसी तरह अनेक प्रकार के मत-मतांतर हो गये और भिन्न भिन्न शास्त्रों का प्रादुर्भाव हुआ । वर्तमान पद्धर्शन उस समय के आचार्यों की व्याख्याएँ हैं । जिन बहुत सी व्याख्याओं में परस्पर अधिक विरोध न था, उनमें से बहुतों का नाश हो गया । कहा जाता है कि पहले कम से कम ७८ प्रकार के दार्शनिक संप्रदाय थे; पर मुख्य यही छः थे । भिन्न भिन्न आचार्य सृष्टि के रहस्य का पृथक् पृथक् रूप के उद्घाटन करते थे । पर इन सब से प्रबल दो तरह के सिद्धान्त थे । एक सिद्धान्त सांख्य का था, जो आत्मा और

प्रकृति में भेद मानना था। दूसरा सिद्धान्त सांख्य के विरुद्ध था। यही दूसरा सिद्धान्त विद्यमिश्र रूप में वेदान्त के नाम से प्रचलित हुआ था। अस्तु: बुद्धदेव के समय तक दार्शनिक विचार परिपक्व हो चुके थे। पर बाह्यरे वेदान्ती, मिथु, संन्यासी और पश्चिमाजक आत्मा, परमात्मा, माया और प्रकृति संबंधी हुए विवरण-वाद में ही कैसे हुए थे।

इस तरह के बुद्ध के जन्म-समय में (१) यज्ञ और बलिदान, (२) दृढ योग और तपस्या तथा (३) ज्ञान-मार्ग और दार्शनिक विचार, ये तीन मुख्य धाराएँ बड़ी प्रचलता में बढ़ रही थीं। पर महा के नीचे और भी बहुत सी छोटी छोटी धाराएँ थीं। जैसे, टोने-टोटके का लोगों में बहुत रिवाज था। सर्प, वृक्ष आदि की पूजा तथा भूत-पुद्गल आदि का माहात्म्य भी बारी बौर पर फैला हुआ था। पर उस समय असली प्रभ, जो मनुष्य के सामने अनादि काल से चला आ रहा है, यह था कि जो कुछ दुःख इस संसार में है, उसका कारण क्या है। आशिकों ने इसका उत्तर यह दिया था कि संसार में दुःख का कारण देवताओं का क्रोध है। उन लोगों ने देवताओं का प्रसन्न करने का साधन पशु-यज्ञ गिरा दिया था; क्योंकि लोक में देखा जाता है कि जो मनुष्य रष्ट हो जाता है, वह प्रार्थना करने और भेंट देने से प्रसन्न हो जाता है। दृढ योग और तपश्चरण करने-वालों ने इस प्रभ का यह उत्तर दिया कि तपस्या से मनुष्य अपनी इन्द्रियों को अपने वश में कर सकता है; और इन्द्रियों को वश में करने से वह चित्त की शान्ति अथवा दुःख से छुटकारा पा सकता है। ज्ञान-मार्ग का अनुसरण करनेवालों ने इस प्रभ का उत्तर

यह दिया कि ज्ञान के द्वारा अज्ञान का नाश करके मनुष्य दुःख में मुक्ति पा सकता है। पर ये तीनों उत्तर मनुष्यों के हृदयों के संतोष और शान्ति देने में असमर्थ थे। उस समय समाज में सच से बड़ी आवश्यकता महानुभूति, प्रेम और दया की थी। समाज में नीरसता, निर्दयता और शुष्क ज्ञान मार्ग का प्रचार हो रहा था। उस समय समाज को एक ऐसे बीज की आवश्यकता थी, जो उसके इस रोग की ठीक तरह से दवा करता। भगवान् बुद्धदेव ने अपना ही संसार में दया की आवश्यकता की ठीक तरह से समझा, और तब अच्छी तरह मोक्ष समझकर उन्होंने दुनिया को जो उपदेश दिया, और जो नई बात लोगों को बतलाई, वह यह थी कि जो लोग संसार में धर्म-मार्ग पर चलना चाहते हैं और परापूर्व तथा आत्मोन्नति में लगना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि वे दयालु, सदाचारी और पवित्र-हृदय बनें। बुद्ध के फलने लोगों का विश्वास था यज्ञों में, मंत्रों में, नपस्याओं में और शुष्क ज्ञान-मार्ग में। पर बुद्ध ने यज्ञ, मंत्र, कर्म काण्ड और धर्मोपास की जगह लोगों को अपना अंतःकरण शुद्ध करने की शिक्षा दी। उन्होंने लोगों को दीनों और दरिद्रों की भलाई करने, बुराई से बचने, सब में भाई की तरह रहने और सदाचार तथा सच्चे ज्ञान के द्वारा दुःखों में हृदयारा पाने का उपदेश दिया। उनकी दृष्टि में ब्राह्मण और शूद्र, ऊँच और नीच, अमीर और गरीब सब बराबर थे। उनके मत में सब लोग पवित्र जीवन के द्वारा निर्वाण-पद प्राप्त कर सकते थे। वे सब को अपने इस धर्म का वरदान देने थे। बुद्ध भगवान् की पवित्र शिक्षाओं का यह प्रभाव हुआ कि बुद्ध ही रत्नाश्रयों में बौद्ध धर्म

केवल एक ही जाति या देश का नहीं, बल्कि समस्त एशिया का मुख्य धर्म हो गया। इन महात्मा का जीवन चरित्र और इनके उपदेश तथा सिद्धांत आगे के अध्यायों में विस्तारपूर्वक लिखे जायेंगे। पर इसके पहले हम जैन धर्म और उसके मंस्थापक महावीर स्वामी का भी कुछ परिचय दे देना चाहते हैं। क्योंकि जिस समय बुद्ध भगवान् हुए थे, उसी समय महावीर स्वामी भी अपने धर्म का प्रचार कर रहे थे। इनके अतिरिक्त दोनों के निशानों में भी बहुत कुछ समानता थी।

---

## तीसरा अध्याय

### जैन धर्म का प्राचीन इतिहास

जैन धर्म की स्थापना—ईसा के पूर्व छठी शताब्दी के उत्तर भाग में भारतवर्ष में कई नये नये धर्मों और संप्रदायों का जन्म हुआ था। बौद्ध ग्रंथों से पता लगता है कि बुद्ध के समय में प्रायः तिरसठ संप्रदाय ऐसे प्रचलित थे, जिनके सिद्धांत ब्राह्मण धर्म के विरुद्ध थे। जैन साहित्य से तो इससे भी अधिक संप्रदायों का पता लगता है। इनमें से कुछ संप्रदाय कदाचिन् बुद्ध के भी पहले से चले आ रहे थे। इन संप्रदायों में से वर्तमान महावीर का स्थापित किया हुआ जैन संप्रदाय भी एक है। बुद्ध की तरह महावीर ने भी वेदों, यज्ञों और ब्राह्मणों की पवित्रता और श्रेष्ठता का खंडन करके अपने धर्म का प्रचार किया था। पर वह एक विचित्र बात है कि बुद्ध की तरह महावीर ने भी भिक्षुओं के नियम तथा उनके जीवन का क्रम ब्राह्मणों के धर्म से ही ग्रहण किया। स्मृतियों और धर्म-शास्त्रों में हिंदुओं का जीवन ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और परिव्राजक इन चार आश्रमों में विभक्त है। कौटिलीय अर्थशास्त्र में परिव्राजक के कर्तव्यों का वर्णन इस प्रकार किया है—“इंद्रियों का दमन करना, सांसारिक व्यवहारों को त्यागना, अपने पास धन न रखना, लोगों का संग न करना, भिक्षा

योगधर स्थाना, बन में रहना, एक ही स्थान पर लगातार न रहना, बाय और आभ्यन्तरिक शुद्धता रखना, प्राणियों की हिंसा न करना, सत्य का धारण करना, किसी में ईर्ष्या न करना, सब पर दया करना और सब को सुना करना, ये सब कर्त्तव्य परिश्राज के हैं।" जैन ग्रंथों में भी दूगरे राज्यों में भिक्षुओं के यही कर्त्तव्य दिये गये हैं। हममें प्रकट है कि भिक्षुओं के नियम तथा उनके जीवन का कस महार्थीर स्वामी ने भी ब्राह्मण धर्म से ही ग्रहण किया था।

जैन धर्म की प्राचीनता—बहुत समय तक लोगों का यह विश्वास था कि जैन धर्म भी बौद्ध धर्म की ही एक शाखा है। लेसन, वेपर और विल्सन आदि युरोपीय विद्वानों का मत था कि जैन लोग बौद्ध ही थे, जिन्होंने बौद्ध धर्म छोड़कर उस धर्म की एक अलग शाखा बना ली थी। बौद्ध और जैन ग्रंथों तथा सिद्धांतों में बहुत कुछ समानता है, इसी से कदाचिन् इन विद्वानों ने यह निश्चय किया था कि जैन धर्म बौद्ध धर्म की ही एक शाखा है। पर डाक्टर व्यूलर और डाक्टर जैकाबी इन दो जर्मन विद्वानों ने जैन ग्रंथों की सूख अच्छी तरह खोज करने और बौद्ध धर्म तथा ब्राह्मण धर्म के ग्रंथों से उनकी तुलना करने के बाद पूरी तरह से इस मत का खंडन कर दिया है। अब यह सिद्ध हो गया है कि जैन और बौद्ध दोनों धर्म साथ ही साथ स्वयंभू हुए थे और कई सताब्दियों तक साथ ही साथ प्रचलित रहे। पर अन्त में बौद्ध धर्म का तो भारनवर्य में लोप हो गया, और जैन धर्म अब तक यहाँ के कुछ भागों में प्रचलित है। कुछ विद्वानों का तो यह भी मन है कि जैन धर्म बौद्ध धर्म से भी पुराना है।



जैन धर्म के चौबीस तीर्थंकर—साधारणतः महावीर ही जैन धर्म के वास्तविक संस्थापक माने जाते हैं। पर जैन लोग अपने धर्म को अत्यन्त प्राचीन बताते हैं। उनका कहना है कि महावीर के पहले तेईस तीर्थंकर हो चुके थे, जिन्होंने समय समय पर अवतार लेकर संसार के निर्वाण के लिये सत्य धर्म का प्रचार किया था। इनमें से प्रथम तीर्थंकर का नाम ऋषभदेव था। ऋषभदेव कब हुए, यह नहीं कहा जा सकता। जैन ग्रंथों में लिखा है कि वे करोड़ों वर्ष तक जीवित रहे। अतएव प्राचीन तीर्थंकरों के बारे में जैन ग्रंथों में लिखी हुई बातों पर विश्वास करना असंभव है। जैन ग्रंथों के अनुसार बाद के तीर्थंकरों का जीवन-काल घटता गया; यहाँ तक कि तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का जीवन-काल केवल सौ वर्ष माना गया है। कहा जाता है कि पार्श्वनाथ महावीर स्वामी से केवल ढाई सौ वर्ष पहले निर्वाण-पद को प्राप्त हुए थे। महावीर चौबीसवें और अन्तिम तीर्थंकर माने जाते हैं।

तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ—डाक्टर जैकाजी तथा अन्य विद्वानों का मत है कि पार्श्वनाथ ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। इन विद्वानों के मत से पार्श्व ही जैन धर्म के वास्तविक संस्थापक हैं। कहा जाता है कि वे महावीर के निर्वाण के ढाई सौ वर्ष पूर्व हुए थे; अतएव उनका समय ई० पू० आठवीं शताब्दी निश्चित होता है। हम लोगों को पार्श्व के जीवन की घटनाओं और उपदेशों के बारे में बहुत कम ज्ञान है। भद्रबाहु कृत जैन-कल्पमूत्र के एक अध्याय में सत्र तीर्थंकरों या जिनों की जीवनी दी हुई है। उसी में पार्श्व की भी संक्षिप्त जीवनी है। पर ऐतिहासिक दृष्टि

मे इस अर्थ की मिली हुई बातें सर्वथा माननीय नहीं हैं, क्योंकि जिनने तीर्थंकर हुए हैं, उन सब की जीवनी इसमें प्रायः एक ही होती या दृढ़ पर मिली गई है। इस अर्थ में कहा जाना है कि अनेक तीर्थंकरों की तरह पार्श्व भी सत्रिंश मुक्त के थे। वे ब्राह्मण के राजा अश्वमेध के पुत्र थे। उनकी माता का नाम शम्भा था। तीस वर्षों तक गृहस्थी का सब मुख भोगकर और सब से अपना राज-श्राव्य छोड़कर वे परिब्राजक हो गये थे। बीसवीं दिनों तक ध्यान करने के बाद वे पूर्ण ज्ञान को प्राप्त हुए। तभी से वे स्वामय सबार वर्षों तक परमोच्च चरित्त पद पर रहते हुए अश्वमेध पर्यन्त के शिखर पर निर्वाण को प्राप्त हुए। पार्श्वनाथ के धार्मिक गिज्ञान्ना प्रायः यही थे, जो बाद को महावीर स्वामी के हुए। कहा जाता है कि पार्श्व अपने अनुयायियों को निम्न-निम्न चार नियम पालन करने की शिक्षा देते थे—(१) प्राणियों की हत्या न करना, (२) मद्य-सोदनता; (३) थोड़ी न करना; और (४) धन प्राप्त न करना। महावीर ने एक चौबिसी नियम प्रत्यक्ष-पावन के संबंध में भी बताया था। इसके निवा पार्श्व ने अपने अनुयायियों को एक अधोवास और एक उत्तरीय पहनने की अनुमति दी थी, पर महावीर अपने शिष्यों को विलम्ब नाम रहने की शिक्षा देते थे। ब्रह्मविन्द आनन्दल के “श्वेतादर” और “दिगंबर” जैन मंत्रदाय प्रारंभ में क्रम से पार्श्व और महावीर के ही अनुयायी थे।

महावीर स्वामी की जीवनी—महावीर के जीवन की घटनाओं का संक्षिप्त विवरण जिनका महज मही है; क्योंकि जैन ग्रन्थ-ग्रन्थ में, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, महावीर स्वामी

की जीवनी अनिशानोक्तियों और कल्पनाओं से भरी हुई है। यदि यह संघ वास्तव में महाकाव्य का रचा हुआ हो, और यदि महाकाव्य देश-पुरुष सीमरी राजाजी के पहले के हों, तो महावीर के संघ में इस संघ की कुछ न कुछ बातें ऐतिहासिक दृष्टि में अचरय महत्व की हैं। इससे सिवा जैन धर्म के कई अन्य संघों में भी कुछ कारण ऐसे हैं, जिनसे महावीरके जीवन की भिन्न भिन्न घटनाओं के संघ में अनेक बातों का पता लगता है। बौद्ध संघों से भी महावीर के बारे में बहुत सी बातों का पता लगा है। इन सब बातों के आधार पर महावीर स्वामी की संक्षिप्त जीवनी यहाँ दी जाती है।

माचीन विदेह राजाओं की राजधानी वैशाली है। समृद्ध नगरी थी। इस नगरी में एक प्रचार का प्रचलित राज्य था। इस प्रचलित राज्य के चलनेवाले विच्छेद्वि लोग थे, जो "राजा" कहलाने थे। वैशाली के बाहर पास ही कुछ मास ( वर्तमान बमकड़ नाम का गाँव ) था। वहाँ मिद्धार्थ नाम का एक घन्टाहा और कुलीन कवि रहता था। वह "जादुक" नाम के कवियों का मुखिया था। उसकी सनी वैशाली के राजा चंद्रक की घटन थी और बमकड़ नाम राजकुमारी विख्यात था। चंद्रक की पुत्री का विवाह मगध के राजा विविमान से हुआ था। इस तरह से मिद्धार्थ का मास के राज-घराने में भी कवि-धर्म था। मिद्धार्थ के एक पुत्री और दो पुत्र हुए, जिनमें से छोटे का नाम बर्षमान

या । आगे चलकर वही महावीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ । जैन-ब्रह्म-सूत्र से पता लगता है कि महावीर जब पुण्योत्तर नामक स्थान में जन्म लेने के लिये सतरे, तब वे अपमदत्त नाम के ब्राह्मण की पत्नी देवानन्दा के गर्भ में आये । ये दोनों ( ब्राह्मण और ब्राह्मणी ) भी कुंडग्राम में ही रहते थे । पर इसके पहले यह कभी नहीं हुआ था कि किसी महापुरुष ने ब्राह्मण कुल में जन्म लिया हो । अतएव राज्य (इन्द्र) ने इस महापुरुष को देवानंदा के गर्भ में हटाकर त्रिशला के गर्भ में रख दिया । यहाँ यह कह देना उचित जान पड़ता है कि इस कथा को केवल श्वेतांवरी जैन मानते हैं; दिगंबरों लोग इसे नहीं मानते । दिगंबरों और श्वेतांवरी संप्रदायों में मत-भेद की जो बहुत सी बातें हैं, उनमें से एक यह भी है ।

वर्धमान के सम्म लेने पर राजा मिथार्य के यहाँ बड़ा उत्सव मनाया गया । बड़े होने पर उन्हें सब शास्त्रों और कलाओं की पूर्ण शिक्षा दी गई । समय आने पर यशोदा नाम की एक राजकुमारी से उनकी विवाह हुआ । इस विवाह से वर्धमान की एक बच्ची उत्पन्न हुई, जो बाद को जमालि में व्याही गई । जब वर्धमान ने “जिन” या “अर्हंत” की पदवी प्राप्त करके अपना धर्म चलाया, तब जमालि अपने श्वसुर का स्थित हुआ । उसी के कारण बाद को जैन धर्म में पहली बार मत-भेद खड़ा हुआ । वर्धमान ने अपने माता-पिता की मृत्यु के बाद अपने श्रेष्ठ भ्राता नन्दि-वर्धन की आज्ञा लेकर, तीसवें वर्ष, घर-बार छोड़कर, भिक्षु-ओं का जीवन ग्रहण किया । भिक्षु-संप्रदाय महार करने के बाद वर्धमान ने बहुत कष्ट तपस्या करना प्रारंभ किया । यहाँ तक

कि उन्होंने लगातार तेरह महीने तक अपना वस्त्र भी नहीं बदला और सब प्रकार के कीड़े मकोड़े उनके बदन पर रेंगने लगे। उसके बाद उन्होंने सब वस्त्र फेंक दिये और वे विलकुल नग्न फिरने लगे। निरंतर ध्यान करने, पवित्रतापूर्वक जीवन बिताने और खाने पीने के कठिन से कठिन नियमों का पालन करके उन्होंने अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली। वे बिना किसी छाया के बनों में रहते थे और एक स्थान से दूसरे स्थान को विचरा करते थे। कई बार उन पर बड़े बड़े अत्याचार किये गये, पर उन्होंने धैर्य और शांति को कभी हाथ से न जाने दिया; और न अपने ऊपर अत्याचार करनेवाले से कभी द्वेष ही किया।

एक बार जब वे राजगृह के पास नालन्द में थे, तब गोसाल मंसलिपुत्र नाम के एक भिक्षु से उनका साक्षात्कार हुआ। इसके बाद कुछ वर्षों तक उसके साथ महावीर का बहुत घनिष्ठ संबंध रहा। छः वर्षों तक दोनों एक साथ रहते हुए बहुत कठोर तपस्या करते रहे। पर इसके बाद किसी साधारण बात पर झगड़ा हो जाने के कारण महावीर से गोसाल अलग हो गया। अलग होकर उसने अपना एक भिन्न संप्रदाय स्थापित किया और यह कहना प्रारंभ किया कि मैंने तीर्थंकर या अर्हंत का पद प्राप्त कर लिया है। इस प्रकार जब महावीर तीर्थंकर हुए, उसके दो वर्ष पहले ही गोमाल ने तीर्थंकर होने का दावा कर दिया था। गोसाल का स्थापित किया हुआ संप्रदाय "आजीविक" के नाम से प्रसिद्ध है। गोसाल के सिद्धांतों और विचारों के बारे में केवल जैन और बौद्ध ग्रंथों से ही पता लगता है। गोसाल या उसके अनुयायी (आजीविक लोग) अपने सिद्धांतों और विचारों

के संबंध में कोई संशय नहीं छीड़ गये हैं। जैन ग्रंथों में गोमाल के संबंध में बहुत ही बहुत शब्दों का व्यवहार किया गया है। उनमें गोमाल के संबंध में धूर्त, वंचक, दांभिक आदि शब्द बड़े गये हैं। इसमें पता चलता है कि जैनों और अजीविकों में बहुत गहरा मत-भेद था और इसी मत-भेद के कारण महावीर के प्रभाव को प्रारंभ में बड़ा धक्का पहुँचा। गोमाल का प्रधान स्थान आवस्ती में एक कुन्दार की दूकान में था। यह दूकान हालाहला नाम की एक स्त्री के अधिकार में थी। मान्य होता है कि गोमाल ने आवस्ती में बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी।

बारह वर्षों तक कठोर तप करने के बाद तेरहवें वर्ष महावीर ने वह सर्वोच्च ज्ञान या कैवल्य पद प्राप्त किया, जो दुःख और सुख के बंधन से पूर्ण मोक्ष प्रदान करता है। उसी समय से महावीर स्वामी “जिन” या “अर्हत” कहलाने लगे। उस समय उनकी आयु ४२ वर्ष की थी। तभी से उन्होंने अपने धर्म का प्रचार प्रारंभ किया और “निर्मय” नाम का एक संप्रदाय स्थापित किया। आजकल “निर्मय” (बंधन-रहित) के स्थान पर “जैन” (जिन के शिष्य) शब्द का व्यवहार होता है। महावीर स्वामी स्वयं “निर्मय” भिक्षु और “ज्ञातृ” वंश के थे; इससे उनके विरोधी बौद्ध लोग उन्हें “निर्मय ज्ञातृपुत्र” कहा करते थे। महावीर स्वामी ने तीस वर्षों तक अपने धर्म का प्रचार करते हुए और दूसरे धर्मवालों को अपने धर्म में लाते हुए चारों ओर भ्रमण किया। वे विराट् परदेस मगध और जंग के राज्यों में, अयोध्या उत्तरी और दक्षिणी विहार में, घूमते हुए वहाँ के सभी बड़े बड़े नगरों में गये। वे अधिकतर चंपा, मिथिला, आवस्ती, वैशाली या राजगृह में रहते थे। वे

बहुधा समग्र के राजा विविमार और अजातशत्रु ( कृषिक ), से मिलते थे । जैन ग्रंथों में पता चलता है कि उन्होंने समग्र के उस से उस सम्राजों में से बहुत से लोगों को अपने धर्म का अनु-यायी बनाया था । जैन ग्रंथों के अनुसार विविमार और अजात-शत्रु महावीर स्वामी के अनुयायी थे । पर बौद्ध ग्रंथों में ये दोनों राजा बुद्ध सम्राज्य के शिष्य कहे गये हैं । मालूम होता है कि दोनों राजा महावीर और बुद्ध दोनों का समान आदर करते थे ।

**महावीर स्वामी का निर्वाण**—महावीर स्वामी ने बहुरार वर्ष की उम्र में एक नगर शरीर छोड़कर निर्वाण पद प्राप्त किया । कनका वेदायमान बरने दिन के पापा नामक प्राचीन नगर में राज-कल्पिपाल के एक लेखक के घर में हुआ था । इस स्थान पर अब भी सदृशों जैन यात्री दर्शन के लिये जाते हैं । जैन ग्रंथों के अनुसार महावीर का निर्वाण विक्रमी संवत् के ४१० वर्ष पहले अर्थात् ई० पू० ५२० में हुआ था । पर महावीर का निर्वाण-काल ई० पू० ५२० वर्ष मानने से एक बड़ी अड़भन बढ़ जाती है कि महावीर और बुद्ध समकालीन नहीं रहते । अतएव बौद्ध ग्रंथों का यह विश्वास सिद्ध हो जाता है कि बुद्ध और महावीर दोनों समकालीन थे । इस बात से प्रायः सभी सहमत हैं कि बुद्ध अवतार का निर्वाण ई० पू० ४८० और ४८० के बीच किसी समय हुआ । महावीर का निर्वाण-काल ई० पू० ५२० वर्ष मानने से महावीर और बुद्ध दोनों के निर्वाण-काल में ५० वर्षों का अन्तर बढ़ जाता है । पर बौद्ध और जैन दोनों ही ग्रंथों में क्या बताया है कि महावीर और बुद्ध दोनों अजातशत्रु ( कृषिक ) के समकालीन थे । यदि महावीर का निर्वाण-काल ई०

पू० ५२७ माना जाय, तो फिर महावीर अजातशत्रु के सम-  
कालीन नहीं हो सकते। अतएव महावीर का निर्वाण-काल ई० पू०  
५२७ नहीं माना जा सकता। डा० जैकोबी महाराय ने प्रसिद्ध  
जैन ग्रंथकार हेमचंद्र के आधार पर यह निश्चय किया है कि  
महावीर का निर्वाण ई० पू० ४६७ के लगभग हुआ\*। संभवतः  
जैकोबी महाराय का यह मत ठीक है; अतएव इस ग्रंथ में हम  
यहां मत स्वीकृत करते हैं।

जैन धर्म के सिद्धान्त—बौद्ध धर्म की तरह जैन धर्म भी  
भिक्षुओं का एक संप्रदाय है। बौद्धों की तरह जैन भी जीव-हिंसा  
नहीं करते। कुछ बातों में तो वे बौद्धों से भी बढ़ गये हैं; और  
उनका मत है कि केवल पशुओं और वृक्षों में ही नहीं, बल्कि  
अग्नि, जल, वायु और पृथ्वी के परमाणुओं में भी जीव है।  
बौद्धों की तरह जैन लोग भी वेद को प्रमाण नहीं मानते। वे कर्म  
और निर्वाण के सिद्धांत को स्वीकृत करते हैं और आत्मा के  
पुनर्जन्म में विश्वास रखते हैं। वे लोग चौबीस तीर्थंकरों को  
मानते हैं।

जैनियों के पवित्र ग्रंथों अर्थात् आगमों के सात भाग हैं,  
जिनमें से अंग मंत्र से प्रधान भाग है। अंग ग्यारह हैं, जिनमें  
से “आचारंग-सूत्र” में जैन भिक्षुओं के आचरण-संबंधी नियम  
और “उपासक दश-सूत्र” में जैन उपासकों के आचरण संबंधी  
नियम दिये गये हैं।

---

\* Cambridge History of India, Vol. I Ancient India,  
p. 156



श्वेतांबर और दिगंबर संन्यास-जैन ग्रंथों से पता लगता है कि महावीर के निर्वाण के दो शताब्दी बाद मगध में बड़ा अकाल पड़ा था। उस समय मगध में चंद्रगुप्त मौर्य का राज्य था। अकाल के कारण जैन परम्परा के रचयिता भद्रबाहु, जो उस समय जैन समाज के प्रसिद्ध अगुआ थे, अपने शिष्यों और साथियों को लेकर मगध में कर्नाटक चले गये। बहुत से जैन मगध ही में रह गये थे और उनके नेता म्थूलभद्र थे। जो जैन चले गये थे, वे अकाल दूर होने पर फिर मगध को लौट आये। पर इस बीच में जो लोग कर्नाटक चले गये थे, उनकी आल दाल में बहुत अन्तर न पड़ गया था। मगध के जैन श्वेत वस्त्र पहनने लगे थे; पर कर्नाटकीय जैन अब तक नग्न रहने की प्राचीन रीति पकड़े हुए थे। इस प्रकार वे दोनों क्रम से श्वेतांबर और दिगंबर कहलाने लगे। कहा जाता है कि ये दोनों मंत्रदाय अंतिम बार सन् ७९ या ८२ ईसवी में अलग हुए। जिस समय दिगंबर लोग कर्नाटक में थे, उस समय श्वेतांबरों ने अपने धर्म-ग्रंथों का संप्रह करके उनका निर्णय किया। पर श्वेतांबरों ने जो धर्म-ग्रंथ एकत्र किये थे, उन्हें दिगंबरों ने खींच्ट नहीं किया। कुछ समय में श्वेतांबरों के धर्म-ग्रंथ गिर बिर हो गये और उनके लुप्त हो जाने का डर हुआ। अतएव वे सन् ४५४ या ४६७ ईसवी में पल्लवी (गुजरात) की सभा में लिपि-बद्ध किये गये। इस सभा में जैन धर्म-ग्रंथों का इस रूप में संप्रह किया गया, जिस रूप में हम आज उन्हें पाते हैं। इन पट्टनाओं और कथानकों के अनिरिक्त मथुरा में बहुत से जैन शिलालेख भी मिले हैं, जिनमें से अधिकतर

बुधन गता बनिष के समय के तथा उनके बाद के हैं। इन शिष्यादेशों में पता लगता है कि श्वेतांबर मंत्रदाय ईसा की प्रथम शताब्दी में विद्यमान था।

ईसवी सन के बाद जैन धर्म की स्थिति—ईसवी सन के बाद का जैन धर्म का प्राचीन इतिहास अंधकार में पड़ा हुआ है। उस समय के इतिहास पर यदि कोई प्रकाश पड़ता है, तो यह केवल मायुरा के शिष्यादेशों में। उनमें जैन धर्म की भिन्न भिन्न शाखाओं और मन्त्रदायों का कुछ कुछ पता लगता है, और उनमें जैन धर्म की जो अवस्था सूचित होती है, वही अभी तब विद्यमान है। हाँ, इन दोनो शताब्दियों में इन मंत्रदायों के नाम और बाहरी रूप कदाचित् बहुत कुछ बदल गये हैं। इन शिष्यादेशों में उन गृह्य उपवासों और उपनिषदों के नाम भी मिलते हैं, जिनमें भिन्न भिन्न समयों में भिक्षुओं और भिक्षुणियों को दान देकर जैनों के भिक्षु-मंत्रदाय को जीवित रक्खा था। इसके सिवा जैन लोग महा मे अपनी पुरानी प्रथाओं पर इतने दृढ़ रहे हैं और किसी प्रकार के परिवर्तन से इतने भागते रहे हैं कि जैन धर्म के मोटे मोटे निर्यात श्वेतांबरों और दिगंबरों के अलग अलग होने के समय जैने थे, वैसे ही प्रायः अब भी चले जा रहे हैं। कदाचित् अभी मे अब भी जैन धर्म बना हुआ है, जब कि बौद्ध धर्म का अपनी जन्म-भूमि में बिल्कुल लोप हो गया है।

## चौथा अध्याय

### गौतम बुद्ध की जीवनी

बुद्ध का जन्म—गौतम बुद्ध का जन्म कब हुआ तथा उनके निर्वाण का समय क्या है, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। डॉक्टर पलीट तथा अन्य विद्वानों ने बुद्ध का निर्वाण-काल ईसा के पूर्व ४८७ वर्ष माना है। निर्वाण के समय बुद्ध अस्सी वर्ष के थे; अतएव बुद्ध का जन्म-काल ईसा के ५६७ वर्ष पूर्वनिश्चित होता है। कहा जाता है कि अंतिम बार जन्म लेने के पहले बुद्ध भगवान् प्रायः ५५० बार पशु, पक्षी तथा मनुष्य के रूप में जन्म ले चुके थे। बुद्ध के इन जन्मों का हाल उन कथाओं में दिया है, जो “जातक” छे के नाम से प्रचलित हैं। अंतिम बार जन्म लेने के पूर्व बुद्ध भगवान् “तुपित” नाम के स्वर्ग में देव के रूप में निवास करते थे। जब इस पृथ्वी पर उनके पुनर्जन्म का समय समीप आया, तब वे बहुत दिनों तक यह विचार करते रहे कि कौन मनुष्य ऐसा योग्य है। जिसके यहाँ हम जन्म लें। अंत में उन्होंने निश्चय किया कि शाक्य वंश के राजा शुद्धोदन की पत्नी मायादेवी के गर्भ में जन्म लेना चाहिए। इस निश्चय के अनुसार बुद्ध ने “तुपित” स्वर्ग से उतरकर शाक्यों की राजधानी कपिल वस्तु में—जो नेपाल की तराई में है—मायादेवी के

---

\* हिन्दी में इनमें की कुछ पुनर् प्रकाशनों “जातक कथामाला” के नाम से प्रकाशित हैं, काशी द्वारा प्रकाशित हुई है। —प्रकाशक ।





ने कुमार का मन वैराग्य की ओर में टटना न देगा, तब उन्होंने उनके विवाह-बंधन में जकड़ने का मनगूना बाँधा ।

सोल्ह वर्ष की उम्र में राजकुमार का विवाह पक्षोम के कोलिय वंश की राजकुमारी यशीधरा से कर दिया गया । राजकुमार महा महलों के अंदर रहने लगे थे, क्योंकि उनके पिता को यह भविष्यद-वाणी पाई थी कि राजकुमार राज्य त्यागकर वैराग्य महत्त्व करेंगे । जब राजकुमार उन्नीस वर्ष के हुए, तब देवी प्रेरणा से उन्होंने अपने सारथी को गैर के शिबे महलों के बाहर रथ ले चलने को कहा । जब वे रथ पर चढ़कर महल के बाहर जा रहे थे, तब देवमायों ने उनके मन को वैराग्य की ओर प्रवृत्त करने के लिये एक बहुत ही जीर्णवायु भुद्धे मनुष्य को उनके सामने भेजा । राजकुमार ने रथ हटानेवाले से पूछा—“यह कौन है ?” सारथी ने उत्तर दिया—“यह बुद्ध मनुष्य है । हर एक प्राणी को एक न एक दिन ऐसा ही होना पड़ता है ।” यह बात सुनकर राजकुमार के मन में संसार-सुख के प्रति अत्यंत ग्लानि उत्पन्न हुई । वहीं से वे महल में लौट आये । इसी तरह दूसरे और तीसरे दिन एक रोगी और एक मुरदा राजकुमार को दिखलाई दिया । राजकुमार ने उसी तरह सारथी से प्रश्न किया, जिसके उत्तर में उसने राजकुमार को जो बात उन दोनों के संबंध में कही, उससे राजकुमार के मन में और भी वैराग्य बढ़ा । चौथा बार, जब वे छपवन को जा रहे थे, रास्ते में उन्हें एक कापाय वस्त्र-धारी भिक्षु दिखलाई पड़ा । जब उन्होंने सारथी से पूछा कि यह कौन है, तब उसने कहा कि यह भिक्षु है, जो संन्यासिक रूप को अपनाकर केवल भिक्षा से अपना

जब वह इन सबका दुःख समझ के उपकार में जीवन व्यतीत करता है, तब समय गुरुदेव के मन में संसार का स्थान बतलाने के लिए भगवान रामना जाग्रत हुई।

## गहन का जन्म

[illegible]

५३' ५४' ५५' ५६' ५७' ५८' ५९' ६०' ६१' ६२' ६३' ६४' ६५' ६६' ६७' ६८' ६९' ७०' ७१' ७२' ७३' ७४' ७५' ७६' ७७' ७८' ७९' ८०' ८१' ८२' ८३' ८४' ८५' ८६' ८७' ८८' ८९' ९०' ९१' ९२' ९३' ९४' ९५' ९६' ९७' ९८' ९९' १००'

[illegible]













एक एक करके इस प्रकार कि सबका साथ सांभालेंगे भ्रमण किया  
है।

बट का प्रथम नियम

[illegible]











वहीं पर, बुद्ध वहाँ दूर, संयुक्त प्रांत की ऐतिहासिक समिति  
 (यू० पी० हिस्टोरिकल सोसाइटी) की ओर में मुगई भी  
 कराई गई थी।

## नालगिरि हाथी का दमन

बुद्ध का अपने भाई देवदत्त उनका यरा और मान  
 देखकर उनमें बहुत झगड़ करता था और अंदर ही अंदर द्वेष की  
 भाव में जला करता था। उसने तीन बार बुद्ध की हत्या करने  
 की चेष्टा की थी। एक बार जब बुद्ध राजगृह की सड़क पर जा  
 रहे थे, तब उसने मगध के महाराज अजातशत्रु की सहायता से  
 नालगिरि नामक एक मतवाला हाथी बुद्ध के प्राण लेने की  
 कोशिश की। किंतु क्योंकि वह मतवाला हाथी नगर के बाहर के  
 बाहर पुमा, क्योंकि बुद्ध ने सम नार्थी के समक पर अपना हाथ  
 फेंकर उसे अपने घरा में कर लिया। सभी समय देवदत्त की  
 सलाह से अजातशत्रु अपने बूढ़े पिता महाराज विविस्वार को  
 राज दाय में बध देने लगा। कहा जाता है कि विविस्वार अन्तिम  
 समय में राज्य की बागडोर अपने पुत्र अजातशत्रु के हाथ में  
 देकर दक्षिण-वाम करने लगा। किंतु अजातशत्रु को इतना धैर्य  
 नहीं कि वह महाराज बनने के लिये विविस्वार की मृत्यु की  
 प्रतीक्षा करता ! बौद्ध ग्रंथों के अनुसार इस राजकुमार ने अपने  
 पिता को मृत्यु के मार डाला। उन्हीं ग्रंथों से यह भी पता लगता है  
 कि जब वह नदी पर आया, तब बुद्ध भगवान् जीवित थे।  
 लिखा है कि अजातशत्रु ने भगवान् के सामने अपने पापों के लिये  
 क्षमा माँगी और उनमें बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण









१. ... .. और उपवास  
 २. ... .. में मिरा एक दान्य  
 ३. ... .. शायद मगधकर काँटा हो गये।  
 ४. ... .. म और शरीर को  
 ५. ... .. पुरुषवन भोजन  
 ६. ... .. में बुद्ध गया  
 ७. ... .. 'बोधि-  
 ८. ... .. करने लगे।  
 ९. ... .. उम्र समय  
 १०. ... .. पदवी  
 ११. ... .. ज्ञानम गये  
 १२. ... .. अपने  
 १३. ... .. करते  
 १४. ... .. दादा बाद  
 १५. ... .. मपटिन  
 १६. ... .. करने के  
 १७. ... .. की राज-  
 १८. ... .. बुद्ध का  
 १९. ... .. अनुयायी  
 २०. ... .. वहाँ  
 २१. ... .. शिष्य  
 २२. ... .. मड,  
 २३. ... .. कर  
 २४. ... .. कुजी-

ज्वार लूंचे । वही ई० पू० ४८७ के लगभग उनका निर्वास हुआ ।  
 दक्षिण भागदार करने के बाद कुछ के शरीर का जो पदार्थों  
 प्राप्त हुआ, उस के काट भाग किये गये । वे काटों भाग काट  
 जगहों में बँट दिने गये और उन पर प्रत्येक जगह ने एक एक  
 भूत बनाया ।

---



































इस विषय में भी उनका सिद्धान्त नया नहीं है। उनके बहुत पहले  
संन्य-दर्शनधार महर्षि कपिल ने तीस्र युक्तियों में वैदिक कार्य-  
समूह की निन्दा की है। महर्षि कपिल के पहले भी वैदिक कर्म-  
समूह के प्रति लोग अस्वाभाविक हो चुके थे। मुण्डकोपनिषद्  
(१.२.७) में कहा गया है—

अथ ह्येव भारता यजमाना अष्टादशोऽष्टमवयवं वेदुः कर्म ।  
एतच्छ्रेयो वेदवितन्वन्ति मूढा अताण्डुं पुनरेवापि यान्ति ॥  
अर्थात् जिनके निहाट कर्म कहे गये हैं, ऐसे अष्टादश जन-  
मुक्त (अथर्व १६ + यजमान १ + यजमानपत्नी १ = १८) यज्ञ-  
होती द्वय (नौछाँ) कमखोर हैं। जो मूर्ख इनको कल्याणकारी  
मानकर इनका अभिनन्दन करते हैं, वे फिर फिर जरा और  
बुद्धि को प्राप्त होते हैं।

वैदिक कर्म-समूह की निन्दा करनेवालों और भी अनेक  
उदाहरण मिल जाते हैं। गीता में भी कहा है—  
वैदिकविषया वेदा निरर्थगुण्यो भवार्जुन ।

(गीता २.४५)

अर्थात् हे अर्जुन, वेद सत्य, राज और तप इन तीनों गुरुओं  
की बातों से भरे पड़े हैं; इसलिये वे निम्न-गुण्य अर्थात् त्रिगुणों  
से प्रभावित हो।

(९) द्रव्य-यज्ञ आदि की अपेक्षा अज्ञान-यज्ञ को ही भेद मानकर  
बुद्धदेव ने इसका प्रचार दिया था। पर उनकी इस बात को भी  
हम नहीं नहीं कह सकते। बुद्धदेव ने जैसे पहले द्रव्य-यज्ञ की बात  
बुरा करके अन्त में अज्ञान-यज्ञ को ही भेद कहा है, वैसे ही गीता में  
भी कहा गया है। यथा—













पत्नी को गृहस्थों में इस प्रकार रहना चाहिए—

- (१) अपने घर के लोगों से ठीक तरह का बर्ताव करना चाहिए।
- (२) मित्रों और सम्बन्धियों का उचित आदर करना चाहिए।
- (३) पानियत धर्म का पालन करना चाहिए।
- (४) विध्यवत के साथ घर का प्रबन्ध करना चाहिए।
- (५) अपने कार्यों में दक्षता और परिश्रम दिखाना चाहिए।

### मित्र और साथी

आप पुरुष को मित्रों से इस प्रकार व्यवहार करना चाहिए—

- (१) उन्हें उपहार देना चाहिए।
- (२) उनसे मृदु संभाषण करना चाहिए।
- (३) उन्हें लाभ पहुँचाना चाहिए।
- (४) उनके साथ बराबरी का बर्ताव करना चाहिए।
- (५) उन्हें साथ रखकर अपने धन का उपयोग करना चाहिए।

मित्रों को हमके साथ इस प्रकार प्रति दिखानी चाहिए—

- (१) जब वह बेमबर हो, तब उसकी निगरानी करना चाहिए।
- (२) यदि वह अन्दक हो, तो उसकी संपत्ति को रक्षा करनी चाहिए।
- (३) आपत्ति के समय उसे शरण देनी चाहिए।
- (४) दुःख के समय हमका साथ देना चाहिए।
- (५) उसके बुद्धि के प्रति दया दिखानी चाहिए।

### स्वामी और सेवक

- स्वामी को सेवकों के साथ इस प्रकार बर्ताव करना चाहिए—
- (१) उनकी शक्ति के अनुसार उन्हें काम देना चाहिए।



भिक्षुओं और ब्राह्मणों को गृहस्थ के प्रति इस प्रकार देखलानी चाहिए—

- (१) उसे पाप करने से रोकना चाहिए ।
- (२) उसे पुरस्च करने की शिक्षा देनी चाहिए ।
- (३) उसके ऊपर दया-भाव रखना चाहिए ।
- (४) उसे धर्म की शिक्षा देनी चाहिए ।
- (५) उसके सन्देह दूर करके स्वर्ग का मार्ग बतलाना चाहिए ।

अब हम गौतम बुद्ध की कर्मव्य-विषयक आशाओं की घोषणा कर उनकी परोपकार-विषयक आशाओं और वचनों का वर्णन करेंगे, जिनके कारण बौद्ध धर्म ने संसार में इतनी प्रसिद्धि पाई है । गौतम बुद्ध का धर्म परोपकार और प्रीति का धर्म है । नीचे के वाक्यों में परोपकार और प्रीति की बहुत ऊँची शिक्षा दी गई है ।

“पूछा कभी पूछा से दूर नहीं होती; पूछा केवल प्रीति में दूर होती है—यही इसका तत्त्व है ।”

“हम लोगों की प्रीति-पूर्वक रहना चाहिए और उन लोगों से पूछा नहीं करनी चाहिए, जो हमसे पूछा करते हैं । जो लोग हमसे पूछा करते हैं, उनके बीच हमें पूछा से रहित होकर रहना चाहिए ।”

“बोध की प्रीति में जीतना चाहिए, पुराणों की भलाई में जीतना चाहिए, लाजब की हारना में जीतना चाहिए, और मृत की शान्त में जीतना चाहिए ।”

गौतम बुद्ध ने अपने अनुयायियों को पुरस्च और भलाई के



## बौद्ध-कालीन भारत

कार्यों की भी बराबर शिक्षा दी है। कुछ उदाहरण :  
दिये जाते हैं।

“पाप न करना, भलाई करना और अपने हृदय को :  
करना, यही बुद्धों की शिक्षा है।”

“भलाई करनेवाला जब इस मसार को छोड़कर दूसरे सं  
में जाता है, तब यहाँ उसके भले कार्य उसके सम्बन्धियों :  
मित्रों की तरह उसका स्वागत करते हैं।”

“वह मनुष्य बड़ा नहीं है जिसके सिर के बाल पक गये  
और जिसकी अवस्था अधिक हो गई है।”

“जिसमें सत्य, पुण्य, प्रीति, आत्मनिरोध और संयम  
और जो अपवित्रता से रहित तथा बुद्धिमान है, बड़ी बड़ा :  
लाना है।”●

बुद्ध भगवान की इन छह शिक्षाओं का यह प्रभाव हुआ  
कुछ ही शताब्दियों में बौद्ध धर्म केवल एक ही जाति या  
का नहीं, बल्कि समस्त परिया का मुख्य धर्म हो गया। इस म  
भी समस्त संसार के एक तिहाई से अधिक लोग बौद्ध धर्म म  
वाते हैं। यह सब बुद्ध भगवान की शिक्षा ही का फल है।

## छठा अध्याय

### बौद्ध धर्म का इतिहास

गौतम बुद्ध ने देश-देशान्तों में अपने धर्म का प्रचार करने के लिये भिक्षु-संघ की स्थापना की थी। यह भिक्षु-संघ संसार के धार्मिक इतिहास में अपने ढंग की अनोखी सस्था है। संसार की ऐसी बहुत कम धार्मिक संस्थाएँ हैं, जो इतनी पूर्णतः एक पट्टी की हों, जितनी पूर्णतः एक बौद्ध संघ की संस्था पट्टी की है। स्वयं भारतवर्ष के इतिहास में भी यह संस्था अपनी तुलना नहीं रखती। पर बौद्ध धर्म की तरह बौद्ध संघ की भी जड़ भारतवर्ष की भूमि में पहले ही से विद्यमान थी। भारतवर्ष में बुद्ध से बहुत पहले ही भिक्षु, तपस्वी, संन्यासी, यति, वैद्यानस, परित्राजक आदि होते चले आये थे। बौद्ध धर्म के ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में बौद्ध संघ का बीज वर्तमान था। बुद्ध भगवान् ने अपने भिक्षु-संघ के लिये जो नियम बनाये थे, वे प्रायः वही थे, जो धर्मशास्त्रों में ब्रह्मचारियों और संन्यासियों के लिये लिखे गये हैं। रामायण, महाभारत और उपनिषदों से पता चलता है कि उस समय स्थान स्थान पर ऋषियों के तपोवन और आश्रम थे, जिनमें ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, परित्राजक और संन्यासी बहुत बड़ी संख्या में एक साथ रहते हुए अपनी आत्मिक वृत्ति किया करते थे। बौद्ध धर्म से भी इस बात के काफी सबूत मिलते हैं कि बुद्ध भगवान् से पहले और बुद्ध भगवान् के समय में भी मृगश्रु के







अन्तेवासी अपना वस्त्र इस तरह पहनकर कि वह मुला रहे, उपाध्याय के पास आता था; और उपाध्याय में प्रणाम करके पास ही बैठे हुए होकर बैठ जाता था। शाय जोड़कर तीन बार कहता था—“भगवन्, मुझे अन्तेवासी बनाइए।” यदि उपाध्याय “हो” कह देता तो वह समझ जाता था कि उसकी प्रार्थना स्वीकृत की गई। बाद भिक्षुओं की एक परिषद् या सभा इस बात पर विचारने के लिये बैठती थी कि यह मनुष्य संघ में भर्ती किया जाना चाहिए। भिक्षुओं की परिषद् या सभा उससे कई प्रश्न करती थी और जब वह उन प्रश्नों के उत्तर देने में पूरा उत्तरता था, तब भर्ती होने के योग्य समझा जाता था। तब संघ का कोई एक भिक्षु कम से कम दस भिक्षुओं की परिषद् या सभा के सामने जाकर यह सूचित करता था—“मंघ के सब लोग मुझे कि अनुष्ठान व्यक्ति अनुष्ठ उपाध्याय से उपसंपन्ना महण करना चाहता है। यदि मंघ उसे लेने को तैयार हो और आज्ञा दे, तो वह उपस्थित किया जाय।” आज्ञा मिलने पर वह व्यक्ति परिषद् के सामने आता था और भिक्षुओं के चरण छूकर बैठे हुए बैठ जाता था। उसके बाद वह शाय जोड़कर तीन बार कहता था—“मैं मंघ से उपसंपन्ना के लिये प्रार्थना करता हूँ। कृपाकर मंघ इस पापपूर्ण मंतार से मेरा बख्श करे।” तब एक योग्य और विद्वान् भिक्षु यह “अति” (शान्ति या प्रसाद) करता था—“मैं संघ को सूचित करता हूँ कि अनुष्ठ नाम का यह व्यक्ति अनुष्ठ नाम के उपाध्याय से उपसंपन्ना महण करना चाहता है। यदि संघ वसन्त करे, तो मैं उसे









बुद्ध ने यह नियम बताया था—“हे भिक्षुओ, उपाध्याय को चाहिए कि वह “सद्धिविहारिक” या शिष्य को अपने पुत्र की तरह समझे; और सद्धिविहारिक को भी चाहिए कि वह उपाध्याय को अपने पिता की तरह माने। इस तरह दोनों एक दूसरे का आदर, विश्वास और सहयोग करते हुए धर्म और विनय की उन्नति करें।”

सद्धिविहारिक अपने उपाध्याय की सेवा दास या भृत्य की तरह करता था। वह प्रातःकाल उपाध्याय को कुंसा दातुन करने के लिये पानी, और सय जलपान देता था। वह उपाध्याय के साथ भिंसा मॉगने के लिये जाता था, उसे पीने के लिये पानी देता था, उसके स्नान के लिये पानी लाता था, उसके वस्त्र सुखाता था और उसके रहने का स्थान मज्झता बुद्धारता था। तात्पर्य यह कि वह उपाध्याय की हर प्रकार से सेवा करता था।

इसी तरह उपाध्याय भी अपने सद्धिविहारिक की आत्मिक और शारीरिक उन्नति का पूरा पूरा ध्यान रखता था। वह उसे सिखा देता था, बीमारी में उसकी सेवा टहल करता था और हर प्रकार से उसकी देखभाल रखता था। यदि शिष्य कोई बहुत ही अनुचित कार्य करता था, तो उपाध्याय उसे निकाल देता था; किन्तु समा मॉगने पर उसे क्षमा भी कर देता था। यदि उपाध्याय सय छोड़कर कहीं चला जाता था, या मर जाता था, या गृहस्था-धर्म में लौट जाता था, या किसी दूसरे संप्रदाय का अनुयायी हो जाता था, तो सद्धिविहारिक को अपने लिये दूसरा आचार्य चुनना पड़ता था।

उपाध्याय के साथ दस वर्षों तक इसी तरह रहने के बाद







भिक्षु में भिन्न प्रकार की औपधियों बनाने और चीर काड़ करने की विधि लिखी है, जिससे हमें उस समय की वैद्यक विद्या का भी कुछ कुछ पता लगता है।

संघ का प्रबन्ध—अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि संघ की व्यवस्था और प्रबन्ध कैसा था। जब तक बुद्ध भगवान् जीवित थे, तब तक उनकी आज्ञा और उनके शब्द ही संघ के लिये कानून का काम देते थे। पर दो कारणों से यह व्यवस्था स्थायी न हो सकती थी। पहला कारण तो यह था कि देश में संघ का विस्तार इतना अधिक हो रहा था कि एक आदमी के बराबर न रह गया था। दूसरा कारण यह था कि बुद्ध के बाद भी संघ का ठीक ठीक परिचालन करने के लिये किसी स्थायी व्यवस्था की आवश्यकता थी। अतएव धीरे धीरे उस स्थायी व्यवस्था का विकास होने लगा। यद्यपि यह व्यवस्था बहुत दिनों में पूर्ण विकास को पहुँची, तथापि इसका बीज बुद्ध के जीवन-समय में ही पड़ गया था। बुद्ध के निर्वाण के बाद जब संघ अपने पूर्ण विकास को पहुँच चुका था, तब भी बुद्ध की आज्ञा और बुद्ध के शब्द ही संघ के लिये कानून थे। वास्तव में संघ का यह एक माना हुआ सिद्धान्त था कि बुद्ध को छोड़कर और कोई संघ के लिये नियम या कानून नहीं बना सकता था। दूसरे लोग बुद्ध के बनाये हुए नियमों की केवल व्याख्या कर सकते थे; पर नये नियम नहीं बना सकते थे। यह सिद्धान्त बुद्ध के निर्वाण के बाद राज-गृह की प्रथम बौद्ध महासभा में निश्चित हुआ था।

हर एक संघ अपने प्रबन्ध में स्वतंत्र था। कोई ऐसी बड़ी संस्था न थी, जो कुल संघों पर अपना दबाव रख सकती। यह









भार में होना था। संघ का भाषारण कार्य चलाने के लिये संघ की ओर से कुछ भिक्षु नियुक्त थे। ऐसे पदाधिकारियों की संख्या संघ के भिक्षुओं की संख्या के अनुसार भिन्न भिन्न होती थी; पर निम्नलिखित पदाधिकारी प्रायः प्रत्येक संघ में रहते थे—(१) “भक्तोद्देशक”—जो भिक्षुओं को भोजन बाँटता था; (२) “भरद्वाचारिक”—जो भरद्वाह का प्रवचन करता था, (३) “शयनासनचारिक”—जो भिक्षुओं के सोने और रहने का प्रवचन करता था; (४) “बीवर प्रतिमादक”—जो भिक्षुओं के लिये वस्त्रों का प्रवचन करता था, (५) “बीवरमाजक”—जो भिक्षुओं को वस्त्र बाँटता था; (६) “पात्रमादापक”—जो भिक्षुओं को भिक्षा-पात्र बाँटता था; (७) “आरामिष्ठ प्रेषक”—जो गालियों का निरीक्षण करता था; और (८) “पानीयचारिक”—जो पाने के लिये पानी का प्रवचन करता था \*। किसी किसी संघ में “नवकर्मिक” नाम का एक और पदाधिकारी रहता था, जिसका काम नई इमारतों बनाना और पुरानी इमारतों की देखभाल करना होता था। प्रत्येक संघ में जितने भिक्षु होते थे, वन संघ के अधिकार और शृद्धावस्था के कारण अधिक आदर होता था। भिक्षुओं में व्यवस्था और विद्या के अनुसार घेर (स्थविर) तथा दहर, उपास्य तथा सार्यविहारी, आचार्य तथा अग्नेवासी होते थे। पर जिन में आपस में और किसी तरह का भेद-भाव न था। भिक्षुनियों का संघ वित्तकुल अलग ही था। भिक्षुनियों के

\* इन सब पदाधिकारियों के नाम “सुवचन” (४-८ और १-२८) में दिये हैं।



































माने को मौन की मरदा दी जाती थी। बाद को चन्द्रगुप्त के पोते अशोक ने शिवार में माने की प्रथा बिनाश की वजा दी थी।

**चन्द्रगुप्त की जीवन-शर्थाँ—**चन्द्रगुप्त का पालन के अन्दर ही रहना था, और बाहर निकलने, मुक्तमें मुक्तमें, वहाँ से वापस आने से शिवार में माने के दिवस निकलना था। वैसे वैसे से वैसे दिन में एक बार शर्धनाश्रम मद्रग करने और मुक्तमें नै करने के दिवस अशोक के बाद आना पड़ता था। चन्द्रगुप्त को शांति करवाने का भी बड़ा शौक था। जिस समय वह दरबार में लोगों के सामने बैठता था, वही समय आर और भी वही शांति करवाने थे। राजा की बर्तनी में बहुत भूमिधाम में मन्द जागी थी और बड़े बड़े लोग वही बहुतसे बर्तनी में बैठ जाते थे। पर इनकी अधिक शांतिधाम और वही होने हुए भी चन्द्रगुप्त को मद्रा अपनी जान का भय लगा रहता था। यह दर के मारे दिन को का लगाव हो राज तक एक ही वमरे में बभी मद्रा होता था। मुक्तगुप्तमें भी जिस दे कि शांतिधाम ने चन्द्रगुप्त को भार डालने की बड़ी बर्तनी का वना लगाकर वमरी जान बचाई थी।

**चन्द्रगुप्त की सफलताएँ—**जिस समय चन्द्रगुप्त राजगरी पर बैठा, वही समय वमरी अवस्था अधिक न थी। वमरे केवल चौबीस बर्तनी तक राज्य किया। इनमें मद्रा होता है कि वह अपनी मद्रा के समय पचास बर्तनी से कम का ही रहा होगा। इस मद्रा में समय में वमरे बड़े बड़े काम किये। वमरे मिन्द्र की यूनानी सेनाओं को भारतवर्ष से निकाल बाहर किया, सेल्यूकस को मद्रा दर दी, एक समुद्र से लेकर दूसरे समुद्र तक वज वमरी भारत अपने अधिकार में किया, बड़ी भारी सेनाएँ सफल की और





































1  
1

1

1

1

रही थी। उनमें से एक जाति "आर्यों" (अराट्रको) की थी। यूनानी इतिहास-लेखकों ने इन्हें छुटेरा और बाहू कहा है। महा-भारत में भी ये छुटेरे और बाहू कहे गये हैं। ये किसी राजा के शासन में न थे। कदाचिन् ये लूट पाट करके अपना गुवाग करते थे। चन्द्रगुप्त मौर्य ने बहुत कुछ इन्हीं की सहायता में उन यूनानियों को पश्चिमी पंजाब से मार भगाया था, जिन्हें मिर्कंदर परिषमोन्दर प्रांत तथा पंजाब पर यूनानी शासन स्थिर रखने के लिये छोड़ दिया था। कदाचिन् इन्हीं की महायत्ना से चन्द्रगुप्त अपने देश को विदेशी यूनानियों की पराधीनता से स्वतन्त्र करके भारतवर्ष का एकदम सम्राट बन सका \*। भायुक्त कारीमसाद ज्ञायमवान ने यह अनुमान किया है, और उनका अनुमान ठीक-नाम होता है, कि पंजाब में आजकल जो "मरोहे" हैं, वे इन्हीं "आर्यों" या "अराट्रको" में बंराधर हैं †।

(२) मातव और छुद्रक—“मातव” और “छुद्रक” दोनों का नाम महाभारत में भी आते हैं। ये दोनों जातियों औरषों की ओर से लड़ी थीं। मिर्कंदर को इन दोनों जातियों से बड़ा भयंकर युद्ध करना पड़ा था। यूनानियों ने इनके नाम क्रम से मल्लोई (Mallous) और ओक्सोड्रकाई (Oxodrakai) लिखे हैं ‡। यूनानी इतिहास-लेखक एरिथन (Arrian) ने इन दोनों जातियों

\* Mc. Crindle's "Invasion of India by Alexander" 38 406.

† Modern Review, May, 1913, p 533.

‡ Mc. Crindle's "Invasion of India by Alexander", 142.



का अनुमान है कि पंजाब और सिन्ध के आजकल के "सन्धी" कदाचित् इन्हीं "सन्धियों" के वंशधर हैं \* ।

( ४ ) अगलस्सोई—यह जाति भी किसी राजा के अधीन न थी । इनने भी सिक्ंदर का मुकाबला बड़ी बहादुरी से किया था । इस जाति के लोग बड़े वीर, देशभक्त और मानमर्त्यांदा के पात्रक थे । वे अग्रविष्टा और आर्यीय अपमान सहने की अपेक्षा मृत्यु की अधिक श्रेष्ठ समझते थे । इन लोगों ने चाणोस हजार पैदल और तीस हजार सवार सेना के साथ सिक्ंदर का सामना किया, पर अंत में वे हार गये । इनमें से बहुतों को मार डाले गये और बहुतों को पकड़कर गुलामों की तरह बेच डाले गये । सिक्ंदर ने इनके देश में तीस मील तक बढ़कर इनके प्रधान नगर पर कब्जा कर लिया । इसके बाद जब यह दूसरे नगर भी और बढ़ा, तब बड़ी दृढ़ता के साथ रोक गया । इस लड़ाई में सिक्ंदर के बहुत से आदमी काम आये । कहा जाता है कि उस नगर में २०,००० मनुष्य थे । जब उन लोगों ने देखा कि अब नगर भी बसा नहीं हो सकती, तब नगर में आग लगाकर वे सब इसने जल मारे । इनमें से केवल तीन हजार मनुष्य बच गये । इस समान्ती समाने में राजपूतों में सन्धी भी प्रया कदाचित् इसी प्रार्थीन समय की प्रथा का अवरोध थी । यह जाति मंत्र-बल, भेदम और बनाब नदियों के बीच में रहती थी । इस जाति का असली नाम क्या था, यह नहीं कहा जा सकता । पर दूसरी लोग इसे अगलस्सोई (Agalassola) कहते थे † ।

\* Modern Review, May 1913, p. 533

† V. Smith's "Early History of India" p. 93.



करते थे। वे किसी राजा के अधीन न थे। राज्य का काम चलाने के लिये वे तीन मुखिया चुनते थे, जो "सेनापति" कहलाते थे। इनकी सेना में साठ हजार पैदल, दस हजार सवार और पाँच सौ रथ थे। इन लोगों ने सिकंदर का अधिपत्य स्वीकृत कर लिया था। ये कदाचिन् उस स्थान के पास नहीं रहते थे, जहाँ पंजाब की पाँचों नदियों एक होकर सिंधु नदी में मिलती थीं \*।

इनके सिवा यूनानी इतिहास-लेखकों ने "संबस्तर्" (Sambastar), "गेड्रोस्टिआइ" (Gedrosai), "एड्रेस्तर्" (Adralstai), "सिथोई" (सीव ?) आदि कई प्रजातन्त्र जातियों के नाम लिखे हैं, जो सिकंदर के समय पंजाब में विद्यमान थीं।

कौटिलीय अर्थशास्त्र में प्रजातन्त्र राज्य—बौद्ध मंत्रों और यूनानी इतिहासकारों के कथन की पुष्टि कौटिलीय अर्थशास्त्र से की होती है, जिसमें एक अध्याय में मंत्रों या गण-राज्यों के बारे में है। उसमें संघ या गणराज्य दो भागों में बाँटे गये हैं; यथा—

"कांमोज-सुगट्ट-सविष भेषवाइयो वासताछोपवीतिनः ।"

"लिप्पिविह-महक-मदक-कुडु-कुड-गोपालादयो राजताक्षीपवीतिनः ॥"

अर्थात्—कांमोज, सुगट्ट आदि के सविष गण व्यापार तथा सेवा करते थे और सेनाओं में मर्त्य होकर युद्ध भी करते थे। ये एक प्रकार के गण राज्य हुए। दूसरे प्रकार का गण-राज्य लिप्पिविहों, कुजियों, मल्लों, मगधों, कुडुहों, कुडमों, पांचालों

\* Mc, Crindle's "Invasion of India by Alexander" p. 252.

† टोल्मिअस कांमोज, अधः ११, अध्याय १.





इतिहास-लेखकों के इतिहासों और बौद्धिकीय कार्य राज्य में प्रजातन्त्र की निम्नलिखित विशेषताएँ सूचित होती हैं।

- (१) साधारण और पर प्रजातन्त्र राज्य के कुछ व्यक्ति शासन कार्य में योग देने थे और सब "राजा" कहलाते थे।
  - (२) उन राज्यों में एक या एक में अधिक प्रधान, मुखिया या अगुआ होते थे, जो शासन कार्य करते थे। किसी किसी राज्य में कुछ कुछ भी ऐसे होते थे जिनके हाथ में शासन का काम रहता था।
  - (३) उन राज्यों में सब के अधिकार बराबर समझे जाते थे।
  - (४) राज्य-संबंधी मामलों पर सब लोग मिलकर सम्भाषन या "संभागाार" में विचार करते थे।
  - (५) वे अपने नियमों का पालन द्योचित रूप से करते थे।
  - (६) अपनी शक्ति बढ़ाने के लिये कभी कभी कई प्रजातन्त्र राज्य एक साथ मिलकर एक संयुक्त राज्य बन जाते थे।
  - (७) उन राज्यों को अपनी प्रतिष्ठा का बड़ा सवाल रहता था। राज्यों के लोग बोरगा के लिये भी प्रसिद्ध थे। हारने की अपेक्षा जीतने हुए मर जाना वे अधिक उत्तम समझते थे।
  - (८) कभी कभी उनमें फूट और द्वेष भी हो जाता था।
- मौर्य काल में प्रजातन्त्र राज्यों का हास—मौर्य काल में धीरे धीरे प्रजातन्त्र राज्यों का हास होने लगा। चन्द्रगुप्त के मन्त्री कौटिल्य की बुद्धि नीति के कारण प्रजातन्त्र राज्य न उदर सके। कौटिल्य की नीति यह थी कि सब छोटे छोटे राज्यों को तोड़कर बड़ा साम्राज्य सदा किया जाय और चन्द्रगुप्त मौर्य उसका विनाश कर दिया। इसलिये उसने इन राज्यों को धीरे धीरे तोड़कर साम्राज्य में मिलाता शुरू किया। उसने देखा कि



## नवौं अध्याय

### मौर्य साम्राज्य की शासन पद्धति

मेगास्थनीज के भारत-वर्णन, कौटिलीय अर्थशास्त्र तथा अशोक के शिलालेखों से मौर्य साम्राज्य की शासन पद्धति का अच्छा पता लगता है। अर्थशास्त्र के अनुसार राज्य-शासन का काम लगभग दस विभागों में बँटा हुआ था। इनमें से मुख्य सेना विभाग, नगर-शासन विभाग, प्रांतीय शासन विभाग, गुप्तधर विभाग, कृषि विभाग, नगर विभाग, व्यापार और वाणिज्य विभाग, नौ विभाग, शुल्क विभाग (चुगी का मदकमा), आधार विभाग (खान का मदकमा), सूत्र विभाग (सुनाई का मदकमा), सुरा विभाग (भाबकारी का मदकमा), पशु-रक्षा विभाग, मनुष्य-नाशना विभाग, आय-व्यय विभाग, परराष्ट्र विभाग, न्याय विभाग आदि थे। कौटिलीय अर्थशास्त्र में इन विभागों के अधिकारों या सुपरि-वेण्डेन्टों के कर्तव्य बहुत विस्तार के साथ दिये गये हैं।

#### सेना विभाग

चन्द्रगुप्त मौर्य की सेना प्राचीन युद्ध के अनुसार पशुपतिगर्ज्य थी, किन्तु उसमें अज्ञ सेना की विशेषता थी। चन्द्रगुप्त की सेना में १,००,००० हाथी, ८०,००० रथ, २०,००० घोड़े और ६,००,००० पैदल सिपाही थे। हर एक रथ पर सारथी के सिवा दो पशुधर और हर हाथी पर महाबल को छोड़कर तीन पशुधर बैठते थे। स रथ से सैनिकों की संख्या ६,००,००० पैदल, २०,०००



जाते थे; “अग्नित्र” जो शत्रु देशों में से भर्त्ता किये जाते थे; और “अटवी” जो जंगली जातियों में से भर्त्ता किये जाते थे \* ।

सैन्य के अस्त्र शस्त्र—कौटिलीय अर्थशास्त्र में “स्थिरयन्त्र” ( जो एक ही जगह से चलाया जाय ), “चलयन्त्र” ( जो एक जगह से दूसरी जगह हटाया जा सके ), “हस्तमुख” ( जिसका सिरा हल की तरह हो ), “धनुष”, “बाण”, “खण्ड”, “सुर-कल्प” ( जो छुरे के समान हो ) आदि अनेक अस्त्र-शस्त्रों के नाम मिलते हैं । इनके भी बहुत से भेद तथा उपभेद थे † ।

दुर्ग या किले—चाणक्य के अनुसार उन दिनों दुर्ग कई प्रकार के होते थे और चारों दिशाओं में बनाये जाते थे । निम्न-लिखित प्रकार के दुर्गों का पता चलता है । “औदक” जो द्वीप की तरह चारों ओर पानी से घिरा रहता था; “पार्वत” जो पर्वतों की चट्टानों पर बनाया जाता था; “धान्यन” जो रेगिस्तान या ऊसर भूमि में बनाया जाता था; और “वनदुर्ग” जो जंगल में बनाया जाता था । इनके सिवा बहुत से छोटे छोटे किले गाँवों के बीच-बीच में भी बनाये जाते थे । जो किला ८०० गाँवों के केन्द्र में बनाया जाता था, उसे “स्थानीय”; जो किला ४०० गाँवों के बीच में बनाया जाता था, उसे “क्षेत्रमुख”; जो किला २०० गाँवों के मध्य में बनाया जाता था, उसे “स्वार्थिक”; और जो किला दस गाँवों के केन्द्र में रहता था, उसे “संपहण” कहते थे ‡ ।

\* कौटिलीय अर्थशास्त्र, अधि० १, अध्याय २.

† कौटिलीय अर्थशास्त्र; अधि० २, अध्याय १८.

‡ कौटिलीय अर्थशास्त्र, अधि० २, अध्या० १ और १ ।



जाता था और उनकी सामाजिक स्थिति के अनुसार उन्हें ठहरे स्थान तथा नौकर बाँट दिये जाते थे। आवश्यक के लिये स्थान तथा नौकर बाँट दिये जाते थे। आवश्यक पढ़ने पर वैद्य लोग उनकी चिकित्सा करने के लिये भी नियुक्त थे। मृत विदेशियों का अन्तिम संस्कार उचित रूप से किया जाता था। मरने के बाद उनकी संपत्ति आदि का प्रबन्ध इस विभाग की ओर से होता था और उसकी आय उनके उत्तराधिकारियों के पास भेज दी जाती थी। यह विभाग इस बात का बड़ा अच्छा प्रमाण है कि इसका तीसरी और चौथी शताब्दी में भारतवर्ष का विदेशी राष्ट्रों से पूरा सम्बन्ध था और बहुत से विदेशी व्यापार आदि के लिये यहाँ आते थे \* ।

द्वितीय विभाग का कर्त्तव्य जन्म और मृत्यु की सख्याओं का ठीक ठीक हिसाब रखना था। ये संख्याएँ इसलिये रखी जाती थीं कि जिसमें राज्य को इस बात का पता लगती रहे कि नगर की आबादी कितनी बढ़ी या कितनी घटी। यह लेखा रखने से प्रजा से कर वसूल करने में भी सहायित होती थी। यह कर एक प्रकार का पोल टैक्स ( Poll-tax ) था, जो हर मनुष्य पर लगाया जाता था। विदेशियों को यह देखकर आश्चर्य होता है कि उस प्राचीन राज में भी एक भारतीय शासक ने अपने साम्राज्य की जन-संख्या जानने का ऐसा अच्छा प्रबन्ध कर रखा था। तृतीय विभाग के अर्थात् व्यापार-वारिग्य का शासन था। विदेशी की चीजों का भाव नियंत्रित करना और सौदागरों से बट-सरो तथा नाप-जोखों का यथोचित उपयोग करना इस विभाग

\* Indian Antiquary; 1905. p. 200























का भारी सुपन्न आने के कारण वे दोनों नष्ट हो गये। तब राक्षस राजा रुद्रदामन् ने फिर से बाँध बनवाया; और उस बाँध तथा मूल का संक्षिप्त इतिहास एक शिलालेख में लिख दिया, जो गिरनार की चट्टान पर खुदा हुआ है\*। रुद्रदामन् का बनवाया हुआ बाँध भी समय के प्रवाह में पड़कर टूट गया, और एक बार फिर से उस में बनवाया गया। इसके बाद मूल और बाँध सब नष्ट हुए, इसका पता इतिहास में नहीं लगता। पर रुद्रदामन् के उक्त शिलालेख से इतना अवसर सिद्ध होता है कि मौर्य सम्राट् सिंघाई के जिये नहरो आदि का प्रयत्न करना अपना परम कर्तव्य समझते थे और साम्राज्य के दूरस्थित प्रान्तों का सिंघाई पर भी पूरा ध्यान रखते थे।

चारुप्य के लेख से यह भी ज्ञात होता है कि कृषि विभाग के साथ साथ "अन्तरिक्ष-विद्या विभाग" (Meteorological Department) भी था। यह विभाग एक प्रकार के यन्त्र (वर्मान कुण्ड) के द्वारा इस बात का निश्चय करता था कि कितना पानी बरस चुका है। बादलों की रंगत से भी इस बात का पता लगाया जाता था कि पानी बरसेगा या नहीं, और बरसेगा तो कितना। सूर्य, चन्द्र और श्वेत्पति की स्थिति और चाल से भी यह निश्चय किया जाता था कि कितना पानी बरसेगा†। व्यापार और वाणिज्य विभाग—मौर्य साम्राज्य में व्यापार

\* Epigraphia Indica; Vol. VIII p 30  
† इतिहास पत्रिका, ख. २, पृष्ठा १ व २४.





























कनके परित्र, बर्म, कर्मादिवा तथा नम जानना, ( ४ ) मन्दिर पर बं पात्रू पशुओं और पक्षियों की गणना करना; और ( ५ ) कर देनेवालों और न देनेवालों की गणना जानना और यह आदम करता कि बौन धन के रूप में कर देना है और बौन परिधम के रूप में ।

गुप्त निरीक्षणों के बर्तव्य ये थे—(१) प्रत्येक गाँव के कुल मनुष्यों की गणना करना; (२) प्रत्येक गाँव के घरों तथा कुटुम्बों की गणना करना; (३) हर एक कुटुम्ब की जाति तथा वारं का पना लगाना; (४) कर-मुक्त गृहों की जाँच करना, (५) प्रत्येक गृह के माली का निरूपण करना, (६) प्रत्येक कुटुम्ब का आध-व्यय जानना; और (७) प्रत्येक घर के पात्रू जानवरों की गणना करना । इनके ये काम तो प्राय गोपों के कामों से मिलते हैं । पर इनके अनिगित इनके मुख्य काम ये थे—(१) गाँव में नये मनुष्यों के आने तथा गाँव छोड़कर जाने का कारण जानना, और (२) गाँव में नये आनेवाले तथा गाँव छोड़कर जानेवाले आदमियों का लेखा रखना तथा संदिग्ध मनुष्यों पर दृष्टि रखना । वे यह काम गृहस्थों तथा संन्यासियों के रूप में रहकर किया करते थे । कभी कभी वे खोरों के भेग में भी पर्वतो, तीर्थों, पाटों और निर्जन स्थानों में जाकर खोरों, शत्रुओं तथा दुष्टों का पना लगाया करते थे ।

राजधानी तथा नगरों के मनुष्यों की गणना करनेवाला कर्मधारी "नागरक" • कहलाता था । प्रत्येक नगर में एक एक













सम्राट की सहायता होती थी। यह कई विचारकों की सहायता से सर्वकर्मियों मुक्तता और सनका निर्णय करता था। इन सहायकों के निका गौवों में पंचायतें भी होती थीं, जो ग्रामवासियों के न्यायों का निपटारा करती थीं। गौवों की पंचायतों में "ग्रामिक" (गौव के मुखिया) और गौव के बृद्ध (ग्राम-बृद्ध) पक्ष के और पर बैठने थे। आवश्यकता पड़ने पर ये लोग खोरी और कर्मिषार के अनुराधी को गौव से बाहर भी निकाल सकते थे।

मौर्य साम्राज्य की दरद-नीति बहुत ख़तरा थी। प्राण-दरद तो बहुत ही सख्त बात थी। किन्तु अपराध होते ही बहुत कम थे। ख़तरा दरद देने का अवसर ही न आता था। खोरी बहुत ही कम हुआ करती थी। मेगास्थनीज ने लिखा है कि मैं जिसने दिनों तक चंद्रगुप्त की राजधानी में रहा, वतने दिन किसी रोद भी २००) से ज्यादा की खोरी नहीं हुई। यह भी मान रहे कि उन दिनों पाटलिपुत्र की आबादी चार लाख थी।

खोरी के लिये ऐसा ख़तरा दरद था कि यदि कोई राजकर्मचारी ८ या १० पण (उन समय का एक सिक्का) चुप लेता था, तो उसे प्राणदण्ड मिलता था; और यदि कोई साधारण आदमी १० या १०० पण चुपता था, तो उसे प्राणदण्ड दिया जाता था। कर्मियों के लिये ख़तरा प्रकार के दरदों की व्यवस्था थी, जैसे सान प्रकार से बेंत लगाने का भी विधान था।



























वह तीन बार “कर्मवाचा” करता था; अर्थात् तीन बार वह प्रस्ताव पुनर्प्रेष करता था । परिपक्व का कोई कार्य तब तक नियमानुसार न सम्पन्न जाता था, जब तक उसके संबंध में परिपक्व के सामने एक बार “शत्रि” और एक या तीन बार “कर्मवाचा” न हो । जब प्रस्ताव नियमानुसार एक या तीन बार मध्य के सामने रख दिया जाता था, तब वह आर ही आर स्वीकृत हो जाता था ।

वृत्तान्त—यदि कोई मध्य प्रस्ताव के विरुद्ध कुछ कहता था और उस पर मतभेद होता था, तो उपस्थित सभ्यों की राय ली जाती थी, और वृत्तान्त के अनुसार ही फैसला दिया जाता था । राय (वोट) लेने के पहले सभ्य-मण्डल व्याख्यान के द्वारा अपने अपने विचार प्रकट करने में और अपनी अपनी राय पर जोर देने में । सभ्यों की राय भिन्न भिन्न रंग की शलाकाओं के द्वारा ली जाती थी । एक मन के लिये एक रंग की शलाका होती थी और दूसरे मन के लिये दूसरे रंग की । यह शलाका आज कल के बोटिंग शिष्ट या चप्पे का काम देती थी । लोगों की राय लेने के लिये और उन्हें यह बताने के लिये कि किस रंग की शलाका से क्या तात्पर्य है, सब को जोर से एक निम्न नियत रहता था, जिसे “रागश-आहूत” कहते थे । जो मनुष्य नियत, निर्भीक और ईर्ष्या में रहित होता था, वही “रागश-आहूत” नियुक्त होता था । सभ्यों की राय या तो प्रकट रूप में ली जाती थी, या गुप्त रूप में ।

अनुपस्थित सभ्यों का शब्द—जब कोई मध्य, बीमारों का और किसी कारण से, उपस्थित न हो सकता था, तब वह अपनी राय भेज देता था । अनुपस्थित सभ्यों की नियमानुसार सम्झति को “हन्” करते थे । परिपक्व की कोई दृष्टि तब तक नियमानु-

कुल न मममी जाती थी, जब तक सम्मति देने का अधिकार पाये हुए कुल सभ्य उममें उपस्थित न हों; या किसी कारण अनुपस्थित होने पर उन्होंने नियमानुसार अपनी सम्मति न प्रकट की हो।

अधिवेशन के लिये कम से कम उपस्थिति या कोरम—कम से कम कितने सभ्यों की उपस्थिति होने पर परिषद् की बैठक हो सकती थी, इसके नियम का बड़ा खयाल रखा जाता था। भिन्न भिन्न कारणों के लिये भिन्न भिन्न संख्या नियत थी। कुछ बातें तो ऐसे थे, जिनके लिये केवल चार सभ्यों की उपस्थिति आवश्यक थी और कुछ ऐसे थे, जिनके लिये कम से कम बीस भिक्षुओं की उपस्थिति परमावश्यक थी। यदि बिना “कोरम” या निर्दिष्ट संख्या के परिषद् की बैठक होती, तो वह नियम-विरुद्ध समझी जाती थी। यदि किसी उपस्थित सभ्य की राय में परिषद् की बैठक नियम-विरुद्ध होती, तो वह उसका विरोध कर सकता था।

गण-गुरुक या हिर (Whip)—यदि यह मममा जाता या कि परिषद् की किसी बैठक में “कोरम” या निर्दिष्ट संख्या न पूरी होगी, तो “कोरम” पूरा करने का प्रयत्न किया जाता था। इस काम के लिये एक सभ्य नियत किया जाता था, जो “गण-गुरुक” कहलाता था। इसे अंगरेजी में “हिर” कह सकते हैं।

परिषद् की बैठक के संबंध में इसी तरह के अनेक छोटे बड़े नियम थे, जिनका यहाँ उल्लेख करना अममभव है। यहाँ केवल मांटी मांटी बातों का उल्लेख किया गया है। पर जो कुछ ऊपर लिखा गया है, उसमें पाठकों ने समझ लिया होगा कि आज का जमाना के सभ्य देशों में पार्लियामेंट या काउन्सिल आदि की बैठकों के जो नियम हैं, प्रायः वे सब बौद्ध काज के संघों और गण-सभ्यों



उत्तरहवाँ अध्याय

## दार्शनिक चिंतन का एक नया सामाजिक आयाम

[illegible]

इस लान का भाव—कुछ लोगों का विश्वास है कि मुह  
मगवान ने ४० उभय दिक्कत उठा दिया था पर ज्ञान ने यह

[illegible]

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥





























का कटार-सन्धार करना सर्वोच्च धर्म लिखा है। गृहस्थाश्रम चारों कामों में सब से श्रेष्ठ समन्त गया है। गृहस्थों के लिये गर्भाधान, पुनर्वन, जातकर्म आदि संस्कार, अष्टका, पावण, पितृ-श्राद्ध आदि द्वादश कर्म और अग्निहोत्र, अग्निष्टोम आदि श्रौत कर्म लिखे गये हैं। ब्रह्मचर्य और गृहस्थाश्रम के सिवा दो प्रकार के आश्रम और ये—वानप्रस्थ और संन्यास। वानप्रस्थ या वैराग्यम वनों में रहते थे, वन-भूत और फल-फल खाते थे, पवित्रतापूर्वक जीवन बिताते थे, हवन करते थे और सबरे मध्या सूर्य को अर्घ्य देते थे। इससे विरक्त संन्यासी या भिक्षुक सिर मुँड़ाये रहते थे; कनधो छोड़े संपत्ति या घर नहीं होता था; वे तपस्या करते थे, भिक्षा माँगकर खाते थे; एक वस्त्र या मृगचर्म पहनते थे; भूमि पर सोते थे, और सदा भ्रमण किया करते थे।



मास का मुगिया (मास-भोजक) या राजा के महामान्य करने थे । कभी कभी राजा किसी मास का घर छोड़ भी देता था, या इसे किसी व्यक्ति अथवा संघ के नाम लिये देता था ।

पर इन मासों का हाल है, जो राजाओं व धर्षीन होने थे । पर किसी जातक या बौद्ध ग्रन्थ से यह नहीं मूचित होता कि धर्षीय बौद्ध राजा के प्रजापन्त्रों या गण-राज्यों में भी मासकामियों से इसी प्रकार दरमांदा कर वसूल किया जाता था । हाँ अगाध के मणिर्देवाने स्वभलेय से यह अवश्य मूचित होता है कि बर्दाबिन् राज्यों के गण-राज्य में इस तरह का कर वसूल किया जाता था । तब अशोक ने लुम्बिनी मास का कर माफ कर दिया था । बर्दाबिन् पर कर कम धर्षीन समय से चला आ रहा था, जिस समय लुम्बिनी मास राज्यों के गण-राज्य में था । इसी लुम्बिनी मास से या इसके पास भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ था । पर इसके सिवा और कोई ऐसा प्रमाण नहीं है, जिससे कहा जा सके कि राज्यों, मने, लिच्छवियों, कोलियों आदि के गण-राज्यों में किसानों पर किसी प्रकार का कर लगाया जाता था । परन्तु फिर भी राज-व्यय के लिये किसी न किसी प्रकार का कर अवश्य रहा होगा ।

गौरी से होता एक समय रहते थे । गौरी के सब घर एक दूसरे से मिले रहते थे । बीच बीच में कम मजिदों रहती थी । आदरों से बना लगता है कि अन्दर गौरी में सीम में सीतब बुद्ध रहते थे । आदरों में बड़े स्तर के घर मिले गये हैं, यथा—आम का मास, जो कपड़ों के कास बात होने से, और एदम् (दा-दम्) मास, जो भी कपड़ों के कास होने से । कपड़ों के कास और मंग, आम और आगच्छ होने से । सब आगच्छों और आदरों पर एक का



































बनते थे। उन दिनों बिना आपस में सहयोग किये "यापारियों" का काम भी न चल सकता था। चोर डाकुओं से व अकेले कर्ना रक्षा न कर सकते थे। चोर और डाकु दल दलितों को चोरी करने और दाका डगाने के लिए निरुत्तम थे। उनके अन्धकारों से बचने के लिये व्यापारियों का भी समूह बनाना जरूरी करनी पड़ती थी। डाकुओं के दल का नाम "जानका" में शायद मिलता है। "सन्निगुम्ह जातक" में "जानका" का उल्लेख है, जिसमें पाँच सौ दाक एक मुन्धिया के नेतृत्व में दलितों के दल गच्छ के दलचन्द डाकुओं का मुकाबला "यापारी" और पेंडवाले सभी कर सकते थे, जहाँ वे भी समूह बनाये जा सकते थे एक दूसरे की सहायता करत। एक समाजा या धर्मवादी का कहना है कि आठवों में कई जगह व्यापार है।

हर एक पेंडवाले के अलग समुदाय की "अला" बतल है। भेरी का हल्लोस देवग बीड़ पन्थों में ही नहीं बल्कि मन्थानियों और आर्चीन शिवांगियों में भी व्यापार है। दाव "जानका" के व्यवसायी और व्यापारी थे, सब भेरी-बट थे। "गुणपन्थ" में "जानका" का उल्लेख है। इसमें



बनाते थे। उन दिनों बिना आपस में सहयोग किये व्यापारियों का काम भी न चल सकता था। चोर डाकुओं से वे अकेले अपनी रक्षा न कर सकते थे। चोर और डाकू दल बाँधकर चोरी करने और डाका डालने के लिये निकलते थे। उनके अत्याचारों से बचने के लिये व्यापारियों को भी समूह बनाकर यात्रा करनी पड़ती थी। डाकुओं के दलों का हाल जातकों में प्रायः मिलता है। “सत्तिगुम्य जातक” में एक ऐसे गाँव का उल्लेख है, जिसमें पाँच सौ डाकू एक मुखिया के नीचे दल बाँधकर रहते थे। इस तरह के दलबन्द डाकुओं का मुकाबला व्यापारी और पेशेवाने सभी कर सकते थे, जब वे भी समाज या श्रेणी बना कर एक दूसरे की सहायता करते। ऐसे समानों या श्रेणियों का उल्लेख जातकों में कई जगह आया है।

हर एक पेशेवाले के अलग समुदाय को “श्रेणी” कहते थे। श्रेणी का उल्लेख केवल बौद्ध ग्रन्थों में ही नहीं, बल्कि मूर्तों, स्तुतियों और प्राचीन शिलालेखों में भी आया है। प्रायः जितने प्रकार के व्यवसायी और व्यापारी थे, सब श्रेणी-बद्ध थे। “मृगपक्ख जातक” में अठारह श्रेणियों के नाम आये हैं। इससे मालूम होता है कि प्राचीन बौद्ध काल में साधारण तौर पर अठारह प्रकार के व्यवसाय और व्यापार होते थे। ये अठारह प्रकार के व्यवसाय कौन थे, इसका निश्चय करना संभव नहीं है। पर मगध ग्रन्थों में जितने प्रकार के व्यवसायों का उल्लेख आया है, उन सब का संग्रह करनेसे अठारह से अधिक व्यवसायों का पता लगता है। इस तरह से संग्रह किये हुए व्यवसायों के नाम इस प्रकार हैं—(१) वट्ठकि (वर्षकी) अर्थात् वट्ठ, जिनमें







# बीज काल'न भाषन

... .. स्वयं सेवक ... ..  
 ... .. का कार्य करती थीं  
 ... .. के इन उन्मत्तों  
 ... .. का प्रचार किन्तु  
 ... .. अथवा संपत्ति  
 ... .. है कि इन  
 ... .. जानते थे।  
 ... .. बापारी लोग सारे  
 ... .. है कि इन  
 ... .. जहाज का  
 ... .. है कि दो सौग  
 ... .. लादकर बना  
 ... .. में लिखा है  
 ... .. मिलकर रोव  
 ... .. के सौदागर  
 ... .. और भारतवर्ष  
 ... .. "महाकवि  
 ... .. मिलकर सारे  
 ... .. प्रक० ६६  
 ... .. है। इस तरह

## तेरहवाँ अध्याय

### प्राचीन बौद्ध काल का साहित्य

भाषा और प्रकार—भौतिक बुद्ध ने किस भाषा में अपने धर्म का प्रचार दिया होगा, इसका अनुमान हम अशोक के शिलालेखों से कर सकते हैं। इन शिलालेखों से हम यह भी अनुमान कर सकते हैं कि बुद्ध से अशोक के समय तक अर्थात् ई० पू० प्रथी शताब्दी से ई० पू० तीसरी शताब्दी तक भारतवर्ष की संवर्षान की भाषा चीन थी। अशोक के लोग निम्नरेह वर्गों भाषा में हैं, जिसे उसके समय में लोग बोलते और समझते थे। अशोक के लोगों से गृहित होता है कि प्राचीन बौद्ध का न की राष्ट्रीय भाषा संस्कृत कदापि न थी। संस्कृत तो बहुत थोड़े से को लिये लोग और आश्रय ही समझते थे।

अशोक के शिलालेखों से बिदिता होगा है कि प्राचीन बौद्ध काल में हिमाचल से विजय दर्शन तक और सिन्धु से गङ्गा तक रहने भारत की भाषा प्रायः एक ही थी। पर इन लेखों से हम-भेद के अनुसार बुद्ध भेद भी थे। इन धेरो से क्या लगा है कि कम समय प्रायः तीन प्रकार की भाषाएँ बोलनी लगी थी। इनमें हम पंजाबी या पश्चिमी भाषा, बङ्गाली या प्रायः देश की भाषा और मगधी या पूर्वी भाषा कर सकते हैं।

पश्चिमी या पंजाबी भाषा कब्र भाषाओं की विशेषता गङ्गा से बहुत दूर की लुप्त थी। इसमें "दिग्दर्शन", "अवयव" आदि



















[illegible]













[illegible]











... १४४ फुट और  
 ... यह परिवर्तन होता है  
 ... हमारे से दो से फुट  
 ... भी मोटे मोटे फुटों  
 ... पर येन फुटों का  
 ... विलक्षण है  
 ... के समय में  
 ... तो लेख सुंदर है  
 ... के बनवाये हुए  
 ... या तोर  
 ... हमारे राज्यों  
 ... इसका काम  
 ... मुरी है।  
 ... मुरी  
 ... है, यह  
 ... पीने का  
 ... निम्नरे  
 ... के  
 ... है।  
 ... या।  
 ... हम  
 ... उस पर  
 ... सुंदर







प्राचीन बौद्ध काल की मूर्तिकारी में एक विशेष बात ध्यान देने योग्य है। उस काल की बनी हुई बुद्ध भगवान् की मूर्ति कहीं नहीं मिलती। इसका एक मात्र कारण यही है कि पूर्वकालीन बौद्धों ने बुद्ध के "निर्वाण" को यथार्थ रूप में माना था। जिसका निर्वाण हो चुका था, उसकी प्रतिमा भला वे क्यों बनाते ? शनैः शनैः प्रथम महायान संप्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ, तब गौतम बुद्ध देवता रूप में पूजे जाने लगे और उनकी मूर्तियाँ बनने लगीं। प्राचीन बौद्ध काल में बुद्ध भगवान् का अस्तित्व कुछ चिह्नों से सूचित किया जाता था; जैसे "वोधि वृक्ष" (पीपल का पेड़), "धर्म-चक्र" अथवा "स्तूप" आदि। इनमें से प्रत्येक चिह्न बुद्ध के जीवन की किसी न किसी प्रधान घटना का सूचक है। पीपल का वृक्ष पर सूचित करता है कि बुद्ध ने इसी पेड़ के नीचे बैठकर बुद्ध पद प्राप्त किया था। इसी तरह चक्र या पहिया बुद्ध के धर्म-प्रचार के आरम्भ का सूचक है और स्तूप उनके निर्वाण (मृत्यु) का चिह्न है। इन चिह्नों से वे स्थान सूचित किये जाते हैं, जहाँ वे प्रधान घटनाएँ हुई थीं।

मौर्य काल की मूर्तियों में पुरुषों की बख-सामग्री एक धोती मात्र थी। शरीर का ऊपरी भाग बिलकुल नग्न रहता था। इस काल की मूर्तियों में अंगरक्षा या कुरता कहीं नहीं मिलता। सिर पर एक मुँहासा या बगड़ी रहती थी। पुरुषों और विशेष करके स्त्रियों की मूर्तियाँ गद्दों से लदी हुई मिलती हैं। इस काल की मूर्तियों के सिर लम्बे, चेहरे गोल और भरे हुए, आँखें बड़ी बड़ी, थोड़ मोटे और कान प्रायः लम्बे हैं। पुरुषों की बगड़ी या मुँहासा इतना अधिक बमका हुआ है कि उसके कारण शरीर के



# बौद्ध-कालीन भारत

## द्वितीय खण्ड

(मौर्य-साम्राज्य के अस्त से गुप्त साम्राज्य के उदय तक)











साल ३६५ तक की अवधि में कुल नदी के किनारे पर श्री-  
कृष्ण 'म' व 'न' समय में स्वतन्त्र थी। इस बात  
का तात्पर्य है कि 'क' समय में आन्ध्र लोग मौर्य साम्राज्य  
के अधीन थे। 'क' समय के तब तक विचार किये गये। अतः  
३६५ तक के समय में मौर्य साम्राज्य के अंतर्गत रहने  
के बाद 'न' समय में आन्ध्र की सैन्य के बाद अवसर  
प्राप्त हुआ। 'न' समय में स्वतन्त्र हो गये। आन्ध्रों ने  
सन् ३६५ तक के 'क' समय में स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया।

समुद्र की ओर बढ़ा—उस स्वतन्त्र राज्य की स्थापना सिद्ध  
 की। इस नवीन  
 राज्य की स्थापना के लिए उन्होंने यहाँ तक कि बरा के  
 समुद्र तट पर एक नया राज्य बनाया। उनका विस्तार पूर्वी घाट से  
 पश्चिमी घाट तक फैल गया। इसके बाद आन्ध्र  
 राज्य की नींव रखी गई। उनमें से केवल एक राजा  
 अशोक के बड़े साम्राज्य के लगभग समय  
 की अवधि में जीवित रहा।

[illegible]







यूक्रेटाइडोज के उत्तराधिकारी—यूक्रेटाइडोज के बाद उसके  
तथा यूक्रिडेमस के बग के बहुत से छोटे छोटे यूनानी राजा हुए-  
त्रिन्ड्रोने बैक्ट्रिया, काबुल, पंजाब और सिंध को आपस में बाँट  
लिया। मिकों से इस तरह के कम से कम ४० यूनानी राजाओं  
के नाम मिलते हैं। उनमें से उल्लेख योग्य केवल तीन ही हैं—एक  
मिजिन्द (मिर्नेइडर), दूसरा गटिण्काइडस और तीसरा हमेसस।

मिजिन्द (मिर्नेइडर)—ऊपर लिखा जा चुका है कि मिजिन्द  
न ई०पू० १५५ के लगभग, पुण्यमित्र के राज्य पर हमला करके  
मुगट्ट (काठियावाड़), मथुरा तथा सिंधु नदी के मुहानेका  
प्रान्त अपने राज्य में मिला लिया था। उसने ई० पू० १६० में  
१५० तक काबुल और पंजाब पर राज्य किया। वह बौद्ध  
समावन्धी था। यही एक ऐसा यूनानी राजा है, जिसका  
नाम भागवतपुर के शर्चान साहित्य में मिलता है। “मिजिन्दपुत्रों”  
वानी साहित्य का एक बहुत ही उत्तम रत्न है। हममें मिजिन्द  
बौद्ध सिंधु नागध्वज में शकाएँ तथा प्रभु करता है और नागध्वज  
में शकाओं का समाधान करता है। पंजाब में इस राजा की  
सबसे बड़ी शक्ति या सामग्री थी। आजकल का स्पातकोट ही  
कालीन राजकीय शक्ति है।

गटिण्काइडस—इस राजा का नाम ग्वाजिपर रिपाम  
में मेनका के नाम समनगर के एक शिजापेक्ष में मिलता है। यह  
सिन्धु क्षेत्र पर राज्य करता है। इस से पता चलता है कि  
यह भी बौद्ध था। गटिण्काइडस, महाबान के प्रीत्यर्थ स्थापित किया  
। यह नाम गटिण्काइडस निवासी, डीघोन के पुत्र, है।

हमेसस—हमेसस का नाम गटिण्काइडस के राज्य में मिलता है। इस



















हुन का पुत्र चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य गद्दी पर बैठा। उसने ई० म० ३८८ के लगभग रहे महे शाहों के राज्य भी दीनकर अपने राज्य में मिला लिये और इस प्रकार भारतवर्ष में एक राज्य सत्ता के दिने मजबूत हो गया।

### पार्थिव (पार्थियन) राजवंश

पार्थिव लोग कौन थे—पार्थिव लोग प्राचीन पार्थिया के रहने-वाले थे। पार्थिवों का ज्ञान परम के सेलिमान के हम और कैम्ब्रिज के दक्षिण-पूर्व में था। पार्थिवों को “पद्म” भी कहते हैं। पद्म राज्य कदाचित् “पार्थिव” का सिक्का हुआ रूप है। इस विद्वानों का मत है कि दक्षिणी भारत का “पद्म” राजवंश नहीं पार्थिवों का पद्मों को एक शाखा है \*। सेल्यूकस के समय में पार्थिया ज्ञान हमारे साम्राज्य में शामिल था। पर सेल्यूकस के बाद हमारे कोने एन्टिओकस थोडस के समय में अपना ई० पू० १४८ के लगभग यह ज्ञान नूनानी शासन में बिल्कुल खत्म हो गया। इस ज्ञानदोस्त का अनुष्ठा समर्थन था, जिसने परम के असंभारजन राजवंश को स्थापना की थी। एंते एंते एंते का प्रमुख कारस में भी बैठा गया। दिगु मारगण पर पार्थिवों का प्रभाव कदाचित् इसके एक सौ वर्ष बाद हुआ। राजवंश के मुख्य मुख्य पार्थिव (पार्थियन) राजाओं का राज दिया जाण है।

सिम्पेरेस प्रथम—एह एहल पार्थिव राजा है, जिसने अपना सिन्धु नदी तक का दक्षिण हमारे इस पर भी फैला।

\* Fleet-Dynasties of the Kharosthi Language, 1881, p. 3, 4. (Dunlop Collection, Vol. I, Part II.)







































परिधियों के समय में ईरान के सस्सानियन बादशाहों ने ईरान पर हमला करके कदाचिन् अपना राज्य यहाँ स्थापित किया। कुछ सस्सानियन सिक्के भी पाये गये हैं, जो वामुदेव के सिक्कों में बिल्कुल मिलते जुलते हैं। इसके पश्चात् छोटे छोटे राज्य राजा काबुल और उसके आस पास के प्रान्तों में बहुत दिनों तक राज्य करते रहे; पर पौंचवीं शताब्दी में हूणों ने हमला करे उन्हें बिल्कुल नेस्त-नाबूद कर दिया। वामुदेव के नाम से ईरान होता है कि कुपण राजा बाद को पूरे हिन्दू हो गये थे, यों तक कि वे अपना नाम भी हिन्दू दंग का रखने लगे थे। वामुदेव के नाम में सूचित होता है कि वह कदाचिन् ईरान था, पर हमके सिक्कों पर नन्दी महिष शिष की मूर्ति है। उसके सिक्कों पर ७४ से ९८ वर्ष तक के पाये गए हैं; अतएव ईरान के बाद मोटे तौर पर उसने ४० वर्षों तक राज्य किया। इस दिशा में हमका राज्य-काल १४०—१८० ई० होता है।

ईसा की साँसरी शताब्दी अंधकारमय—इस बात का एक भी चिह्न नहीं है कि वामुदेव की मृत्यु के बाद कोई सम्राट् का राजा रहा हो। मालूम होता है कि कुपण साम्राज्य का अधःपतन होने ही उसी भारत छोटे छोटे स्वतन्त्र राज्यों में बँट गया। उसी समय आन्ध्र राजाओं का भी अधःपतन हुआ। विष्णु गुप्ता में अधीर, गर्दभिल, राव, वचन, बाहीक आदि विदेशी साम्राज्यों के नाम मिलते हैं, जो आन्ध्रों के बाद साम्राज्यकारी हुए थे। वे राजवंश अधिष्ठार एक दूसरे के समकालीन थे। इनमें से कोई राजवंश मौर्य न था जो अन्य वंशों पर प्रभुत्व का दावा रख सकता। अतः, ईसाई एनीय शताब्दी में जिनने राज-



## बोध कालीन मानव

वह हुए, उनह बाह में किसी बात का शिकार नहीं है। इसी लिए  
 दुःख भाग्य के चक्र और गुण भाग्य के चक्र के बीच में  
 अन्तर धरातल पाट तोर पर इसी नीमरी शलाखी भाग्य के  
 इतिहास का जो उद्गार हुए कहलाता है। लीची गलाही के भाग्य  
 के उद्गार का जो उद्गार है और गुण भाग्य के चक्र से भाग्य  
 का उद्गार का जो उद्गार है इतिहास मिलने लगता है।

## दूसरा अध्याय

### प्रजातन्त्र या गण राज्य

इन पहले खण्ड के आठवें अध्याय में कहा आये हैं कि प्राचीन बौद्ध काल के प्रजातन्त्र राज्य, चारुक्य की कुटिल नीति से, धीरे धीरे मौर्य साम्राज्य में मिला लिये गये और इनका स्वतन्त्र अस्तित्व सदा के लिये नष्ट हो गया। पर जिस संश्लेषण के भाव की वद्वैत इन सब प्रजातन्त्र राज्यों का प्रादुर्भाव हुआ था, वह वसुधैव कुटुम्बक की स्वार्थीनता-प्रेमी जातियों में इतना बद्ध-भूल था कि किसी सम्राट् या मन्त्री की कुटिल नीति से लुप्त न हो सकता था। अनएव मौर्य साम्राज्य का पतन होने ही नये नये प्रजातन्त्र राज्य सिर उठाने लगे। सिद्धों से पता लगता है कि मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद एक ही राताब्दी के अन्दर यौवेय, मानव, वृष्टि, आर्जुनावन, औदुम्बर, कुण्डिन्, शिवि आदि कई प्रजातन्त्र राज्यों का प्रादुर्भाव हो गया। सिद्धों और रिलीनेम्सों के आधार पर इन प्रजातन्त्र राज्यों का विवरण यहाँ दिया जाता है। पर वह कह देना उचित जान पड़ता है कि प्राचीन प्रजातन्त्र राज्यों के लिये बौद्धिकीय अर्थशास्त्र तथा बौद्ध ग्रन्थों में “संघ” शब्द आया है। पर जब बुद्ध भगवान् ने अपने निजुओं के समुदाय का नाम “संघ” रक्खा, तब इस शब्द का राजनीतिक अर्थ जाता रहा। बाद की प्रजातन्त्र राज्यों के लिये संघ के बदले गए शब्द का व्यवहार होने लगा; और ईर्मी लिये सिद्धों ने

















था। यह उनके महत्त्व का ही परिणाम है कि वे जिस प्रान्त में जाकर बसे, वह प्रान्त ही उनके नाम में “मालवा” कहलाने लगा। दोनों गण राज्यों ने विदेशी शक्त धर्मों से युद्ध किया था। मानकों ने नन्दपान की सेना का और यौधेयों ने कुरुदामन् की सेना का पूरा पूरा सुधापना किया था। पर दोनों ही पराजित हो गये। कदाचिन् अन्य गण राज्यों को भी विदेशियों का सामना करना पड़ा था; और कभी भी वही हालत हुई, जो यौधेयों तथा मालवों की हुई थी। इन गण राज्यों के अधःपतन और नाश का एक कारण गुप्त साम्राज्य का उदय भी था। मौर्य साम्राज्य के पहले से ही हर एक सम्राट्, राजनीतिज्ञ और साम्राज्यवादी का यही उद्देश्य था कि वे प्रजातन्त्र या गण राज्य महा के लिये निर्मूल हो जायें। चन्द्रगुप्त मौर्य अपने कुटिल मन्त्री चाणक्य की सहायता से इन प्रजातन्त्र राज्यों को क्षिप्त भिन्न करने में बहुत कुछ सफल हुआ था। गुप्त वंश के सम्राट् भी इसी सिद्धान्त पर चलते थे। समुद्र-गुप्त के इलाहाबादवाले शिलालेख से पता लगता है कि उस प्रतापी सम्राट् ने “यौधेय”, “मालव” और “आर्जुनपुत्र” इन तीन गणों को जीतकर अपने साम्राज्य में मिला लिया था। इस प्रकार बाहर से विदेशियों के आक्रमण के कारण तथा अन्दर से साम्राज्य के उदय और वृद्धि के कारण प्राचीन भारत के इन प्रजातन्त्रों या गण राज्यों का सत्ता के लिये लोप हो गया।

## तीसरा अध्याय

### धार्मिक दशा

बौद्ध धर्म का स्थिति—अशोक की मृत्यु से कलिक के समय तक अर्थात् सोठे सौ पर तीन शताब्दियों तक बौद्ध धर्म उत्तर की ओर बराबर बढ़ता गया। कहा जाता है कि अशोक के बाद गुप्त राजाओं ने बौद्धों पर बड़े बड़े अत्याचार किए पर फिर भी बौद्ध धर्म बराबर प्रगति ही करता रहा। यह कब तक हिन्दुत्व के अन्दर ही न रहा, बल्कि धर्म की सीमा पार करके भारत छोड़, चीन तक भी फैल गया।

बौद्धों पर गुप्तकाल का अत्याचार—यह कहना धर्मव्यव है कि गुप्त वंश के राजा गुप्तधर्म ने बौद्धों पर कितना अत्याचार किया। नागनाथ ने निम्नलिखी भाषा में बौद्ध धर्म का जो इतिहास ग्रन्थ लिखा है उसमें क्या लगता है कि गुप्तधर्म नामक गुप्त वंशी राजा ने मध्य काल में जालन्धर तक अनेक मठ अर्थात् विवेक सौंर न जान दिये बौद्ध विद्वानों तथा भिक्षुओं को मरवा दिये। “विश्वामित्र” ने लिखा है कि गुप्तधर्म ने बौद्ध धर्म को निम्नलिखित बौद्धों से पराजित का “दुर्गुण” नामक विद्वान् विष्णुन करवा कर दिया और राजा (कर्त्तव्य स्थान-होस्ट) के आस पास सर्वत्र शान में जो भिक्षु रहने थे, उन्हें मार दिये। समय है, बौद्ध धर्मव्यव के यह बर्णन अत्यन्त ही है कि इसमें कुछ सार भी आकर है।

पश्चिमोत्तर भारत में बौद्ध धर्म—ई० पू० प्रथम और द्वितीय शताब्दी में मध्य देश में बौद्ध धर्म की जादे जो दशा रही हो, पर पश्चिमोत्तर भारत के यवन या यूनानी राजाओं के राज्यों में इसका मूल प्रचार हो रहा था। प्रसिद्ध यूनानी राजा मिलिन्द (मिलिन्द) बौद्ध धर्म का अनुयायी था। स्वविर नागसेन ने उसे अपने उपदेशों से बौद्ध धर्म में दीक्षित किया था। यही एक ऐसा सुतन्त्र राजा है, जिसका नाम भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य में मिलता है। “मिलिन्द पन्दो” नामक पाली ग्रन्थ में मिलिन्द अपने गुरु स्वविर नागसेन से शंकाएँ तथा प्रश्न करना है; और नागसेन उन शंकाओं का समाधान करता है।

बौद्ध धर्म के अठारह संप्रदाय—बुद्ध के जीवन काल से ही बौद्ध धर्म में परापर मत-भेद उठते और भिन्न भिन्न संप्रदाय निकलते रहे हैं। इन संप्रदायों के मतभेद दूर करने के लिये समय समय पर बौद्ध भिक्षुओं की महासभाएँ होती रही हैं। अशोक के समय में भी इसी तरह की एक महासभा हुई थी। उस के बाद बौद्ध धर्म फिर धीरे धीरे अनेक संप्रदायों में बँटने लगा। यहाँ तक कि कनिष्क के पहले बौद्ध धर्म में मिश्रित रूप से अठारह संप्रदाय हो गये थे। कदाचित् इन अठारह संप्रदायों को एक करने और उनके मतभेद दूर करने के लिये ही कनिष्क के समय में बौद्ध धर्म की चौथी महासभा हुई थी।

कनिष्क के समय की बौद्ध महासभा—बौद्ध धर्म के इतिहास में कनिष्क के राज्य-काल में एक नया ही युग प्रारंभ होता है। उसका राज्य काशगर, पारकन्द, सुतन, काबुल, कन्धार, सिंध, पश्चिमोत्तर भारत, कश्मीर और मध्य देश में फैला हुआ

या । चीन और तिब्बत के बौद्ध संघों में उसकी बहुत प्रशंसा है और उसकी तुलना अशोक से की गई है । जमाने बौद्ध धर्म के प्रसार में बहुत सहायता दी थी । उसके समय में बौद्ध धर्म की तीर्थी यात्रासभा हुई । इस सभा के सम्बन्ध में बौद्ध संघों में परस्पर विरोधावातें पाइ जाती हैं । नारनाथ कुल बौद्ध धर्म के इतिहास में बना रहता है । कि अठारहो सम्प्रदायों के बीच जो मतभेद हो रहा था वह उस सभासभा से नै दृष्टा । बौद्ध धर्म के अठारहो सम्प्रदाय मान्य हुए तिनवर्षितक तिथि-बद्ध किया गया, और गुप्त-वर्षितक बना । अथवा इस वर्षितक के जो भाग तब तक तिथि-बद्ध नहीं हुए थे वे भी तब बद्ध किए गए । एक दूसरे तिब्बती ग्रन्थ में ऐसा बताया है कि कतिपय न विभिन्न विभिन्न सम्प्रदायों के पारस्परिक विरोधों का अन्त करने के लिए अपने गुरु पार्श्व में एक बौद्ध महासभा करने का प्रस्ताव किया । पांच न सह प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया और इसके अनुसार बौद्ध धर्म के विद्वानों की एक बड़ी सभा करने का प्रयत्न किया । कतिपय न इस विधि पर परीक्षा की गई जाती जाती है कि वह क्या विद्वान् बनाया । इस महासभा के उद्देश्य में बहुत उपस्थित थे । इसके समापन बतुविषय में जो कुछ लिखित विद्वानों ने समस्त बौद्ध संघों को बड़े परिवर्तन से अन्तर्गत किया । इस बातका सब सम्प्रदायों के मत के अनुसार एक ही विचार प्रकट और अविरोध-विद्वान् पर स्वीकृत किया कि एक एक राज्य आकाश में महासभा होने । वे महासभा के मत में उपदेश "विश्व विद्या-काण्ड" और "अभिज्ञान विद्या-काण्ड" कहलाते हैं । का इस होता है कि इस महासभा ने कुछ रत्न में इतना लिखित हुए थे, जो सब सम्प्रदायों

को मान्य थे। इस महामत्ता में मय मे माकें की बात यह हुई कि बड़ाहो सम्प्रदायों के बीच का पुराना भगदा सदा के लिये है हो गया। पर इसके साथ ही कुछ नये नये सम्प्रदाय भी सिर उठाने लगे। इस तरह का एक सम्प्रदाय "महायान" था। यह पहले ही मे अपनी प्रारम्भिक अवस्था में विद्यमान था। पर उस समय इसका प्रचार शीघ्रता से होने लगा था।

महायान सम्प्रदाय की उत्पत्ति—आरम्भ में बुद्ध का धर्म एक प्रचार का संन्यास-मार्ग था। "सुत्तनिपाठ" के "खम्मवि-मारमुत्त" में लिखा है कि जिन भिक्षु ने पूर्ण अर्हतावस्था प्राप्त कर ली हो, वह कोई काम न करे; केवल गँड़े के समान वन में निवास करे। "महावग" (५-१-२७) में लिखा है—"जो भिक्षु निर्वाण पद तक पहुँच चुका हो, उसके लिये न तो कोई काम ही अवशिष्ट रह जाता है और न उसे किया हुआ कर्म ही भोगना पड़ता है।" यह संन्यास मार्ग नहीं तो और क्या है? उपनिषद् के संन्यास-मार्ग से इसका पूरा मेल मिलना है। पर अशोक के समय में बौद्ध धर्म की यह दानव बदल गई थी। बौद्ध भिक्षुओं ने अपना संन्यास मार्ग और एकान्त वास छोड़ दिया था और वे धर्म-प्रचार तथा परोपकार के लिये पूर्व में चीन तक और पश्चिम में यूनान तक फैल गये थे। जब उन्होंने शुष्क संन्यास-मार्ग का आचरण छोड़कर परोपकार के कामों में सम्मिलित होना आरम्भ किया, तब नये और पुराने मत में भगदा पैदा हो गया। पुराने मत के लोग अपने मत को "थेरवाद" ( वृद्ध पंथ ) कहने लगे; और नवीन मत-वादी अपने पंथ को "महायान" नाम रखकर पुराने पंथ को "हीनयान" ( हीन पंथ ) कहने लगे।

[illegible]

धर्म की व्यवस्था विगड़ने पर वे केवल धर्म की रक्षा के लिये समय समय पर बुद्ध के रूप में प्रकट हुआ करते हैं; और देवा-दिग बुद्ध की भक्ति करने से, उनके स्तूप की पूजा करने से, भवदा उन्हें भक्ति-पूर्वक दो चार पुष्प समर्पण कर देने से मनुष्य को सद्गति प्राप्त हो सकती है" \*। मिलिन्द पन्हो (३-७-२) में यह भी लिखा है—“किसी मनुष्य की सारी उन्नत दुराचरणों में क्यों न कीं हो, परन्तु मृत्यु के समय यदि वह बुद्ध की शरण में जाय, तो उसे अवश्य स्वर्ग की प्राप्ति होगी।” उन्नी पन्थ (६-२-४) में नागसेन ने मिलिन्द से कहा है—“गृहस्थाश्रम में रहते हुए भक्ति के द्वारा निर्वाण पद पा लेना असंभव नहीं है।” कम यही भक्ति-मार्ग महायान की मुख्य विशेषता है।

महायान पर अवधूतीता का प्रभाव—बुद्ध भगवान् का प्राचीनमत शुद्ध संन्यास-मार्ग था। इस संन्यास-मार्ग में भक्ति-मार्ग की उत्पत्ति आप ही आप, बिना किसी बाहरी प्रभाव के हो गई हो, यह समझ में नहीं आ सकता। अतएव सिद्ध होता है कि इस पर अवश्य कोई बाहरी प्रभाव पड़ा। बौद्ध ग्रन्थों से भी यही सूचित होता है। विज्वती भाषा के सारानाथ वाले बौद्ध धर्म के विश्वास से पता लगता है कि प्राचीन बौद्ध धर्म में महायान के भ्रम से जो नया सुधार हुआ, उसके आदि कारण कृष्ण और श्वेता थे। सारानाथ के ग्रन्थ में लिखा है—“महायान पन्थ के मुख्य संस्थापक नागार्जुन का गुरु राहुलमद्र नामक बौद्ध पहले

\* देखिये सटर्नट्रैटिक (२, ७७-६८, ६, २२; १२, १-२६) तथा मिलिन्द पन्हो (३-७-७.)



प्राप्त था। उस प्राप्ति को महायान की कल्पना भीकृष्ण तथा गणेश जी की कृपा में प्राप्त हुई थी।” इसका यही अर्थ है कि यद्यपि प्राचीन बौद्ध धर्म केवल मन्यास-प्रधान था, पर उसमें से भक्ति-प्रधान तथा कर्म-प्रधान महायान धर्म की उत्पत्ति भगवान् श्रीकृष्ण की भगवद्गीता के प्रभाव में हुई, अर्थात् महायान बौद्ध धर्म पर भगवद्गीता का बहुत प्रभाव पड़ा; और उसका भक्ति-मार्ग इसी भगवद्गीता का परिणाम है \*।

महायान संप्रदाय पर विदेशियों का प्रभाव—जब तक बौद्ध धर्म भारतवर्ष की सीमा के अन्दर रहा, तब तक वह अपने शुद्ध रूप में बना रहा। पर अशोक के समय में जब से वह भारतवर्ष की सीमा पार करके दूसरे देशों में गया, तभी से उसके प्राचीन रूप में परिवर्तन होन लगा। अशोक के समय में उसके धर्म-प्रचार होने मारिया, मिस्र, साइरीनी, यूनान, एथियोपिया, गान्धार, साम्बोन् और तदा में जाकर अपने धर्म का प्रचार किया। यह स्पष्ट है कि गौतम बुद्ध के जो उपदेश या सिद्धान्त भारतवर्ष के अन्दर रहनेवाले लोगों के हृदयों पर प्रभाव डाल सकते थे, वे अन्य रूप में अन्यमान के बाहर रहनेवाली यूनानी आदि जातियों के हृदयों पर प्रभाव न डाल सकते थे। इसलिये अशोक के उपदेशों का प्रभाव का अनुसार बौद्ध धर्म में परिवर्तन करने का आवश्यकता हुई। अशोक के बाद मौर्य साम्राज्य का अस्तित्व नष्ट हो भारतवर्ष पर यूनानियों, शकों, पार्थियों और



उपदेश अधिकतर शुद्ध रूप में हैं, पर महायान संप्रदाय में वे परि-  
रहित रूप में हैं अर्थात् उनमें भक्तिमार्ग की प्रबलता दिखाई देती है।

( ३ ) ज्ञानयान संप्रदाय का अधिक प्रचार दक्षिण में और  
विशेषतः तमिल तथा बरमा में था पर महायान संप्रदाय का प्रचार  
उत्तर इन्डस के देशों में और नेपाल तथा चीन में था ।

ज्ञानयान संप्रदाय में गौतम बुद्ध देवता के रूप में  
देखा जाता था । इसी कारण अति प्राचीन बौद्ध काल में उनकी  
मूर्तियाँ बनाई जाती थीं । पर महायान संप्रदाय में बुद्ध  
देवता के रूप में पालना नहीं होता । इसीलिये कुषाणों के राज्य-काल में  
उनकी मूर्तियाँ बनने लगीं ।

( ४ ) ज्ञानयान संप्रदाय एक तरह का सन्यास या ज्ञान-  
मार्ग था पर महायान संप्रदाय एक तरह का भक्ति-मार्ग था  
इसलिये ज्ञानयान संप्रदाय ने सन्यास या ज्ञान पर और महायान  
संप्रदाय ने भक्ति पर अधिक ध्यान दिया था ।

ज्ञानयान के अनुसार सब वस्तुओं की निर्माण भित्ति  
सब वस्तुओं के समान समान से सब तरह का नाश होइकर मिट  
जाता था । इसलिये ज्ञानयान के अनुसार सब वस्तुओं  
का नाश होना ही ज्ञानयान का उद्देश्य और भक्ति के मार्ग  
के अनुसार सब वस्तुओं का नाश होना ही ज्ञानयान का उद्देश्य है ।

### ब्राह्मण धर्म की स्थिति

इस नष्ट नहीं हुआ—अर्थात् इस समय तक ब्राह्मण धर्म  
का नाश नहीं हुआ । इसलिये इस समय तक ब्राह्मण धर्म का प्रचार बहुत लोगों के माध्यम से हो रहा था ।



नगरपालिका अधिकारीहरूले भन्नु सत्य हो कि यहाँ महापौरासन संस्थाको भेदभावको  
बिना नै सञ्चालित भइरहेको छ। यहाँको विकासको लागि सबैको सहयोग चाहियो।

3. महाभारत महाकाव्य का अष्टादश अध्याय बृहन्निषद् में भी मिलता है। इस अध्याय में श्री कृष्ण महाभारत महाकाव्य का प्रचार करते हुए दशार्जुन को बड़े पैमाने पर संबोधित करते हैं।

[illegible][illegible]

१. दूध का रस निकालें।  
 २. दूध का रस निकालें।  
 ३. दूध का रस निकालें।  
 ४. दूध का रस निकालें।  
 ५. दूध का रस निकालें।  
 ६. दूध का रस निकालें।  
 ७. दूध का रस निकालें।  
 ८. दूध का रस निकालें।  
 ९. दूध का रस निकालें।  
 १०. दूध का रस निकालें।

9 9 9 9 9

श्राद्धार्थं यमं नष्टं नष्टं ॥ ५० ॥  
 न मरुतं नष्टं नष्टं ॥ ५१ ॥  
 मरुतं नष्टं नष्टं नष्टं ॥ ५२ ॥

१. १०००  
२. १०००  
३. १०००





ब्राह्मणों का प्रभाव—अरोंक के समय में ब्राह्मणों का जो प्रभाव पट गया था, वह इस समय धीरे धीरे फिर बढ़ने लगा था। विरोचतः गुंग और काएव वंश के राजाओं ने ब्राह्मणों का नटप्राय महत्व फिर से स्थापित करने में बहुत सहायता दी। ज्यमित्र ने स्वयं अश्वमेध यज्ञ करके ब्राह्मणों का सम्मान किया; और काएव राजा स्वयं ब्राह्मण कुल के थे। इन्हीं दोनों राज-वंशों के समय में ब्रह्मचिन् उस पौराणिक धर्म की नींव पड़ी, जो आगे चलकर गुप्तवंशी राजाओं के समय में पूर्ण सन्नति को प्राप्त हुआ।

बस; उस समय की सामाजिक दृष्टि के बारे में इससे अधिक और कोई बात शायद नहीं है।





[illegible][illegible]

## Introduction







[illegible]









1. ...  
 2. ...  
 3. ...  
 4. ...  
 5. ...  
 6. ...  
 7. ...  
 8. ...  
 9. ...  
 10. ...  
 11. ...  
 12. ...  
 13. ...  
 14. ...  
 15. ...  
 16. ...  
 17. ...  
 18. ...  
 19. ...  
 20. ...  
 21. ...  
 22. ...  
 23. ...  
 24. ...  
 25. ...  
 26. ...  
 27. ...  
 28. ...  
 29. ...  
 30. ...  
 31. ...  
 32. ...  
 33. ...  
 34. ...  
 35. ...  
 36. ...  
 37. ...  
 38. ...  
 39. ...  
 40. ...  
 41. ...  
 42. ...  
 43. ...  
 44. ...  
 45. ...  
 46. ...  
 47. ...  
 48. ...  
 49. ...  
 50. ...  
 51. ...  
 52. ...  
 53. ...  
 54. ...  
 55. ...  
 56. ...  
 57. ...  
 58. ...  
 59. ...  
 60. ...  
 61. ...  
 62. ...  
 63. ...  
 64. ...  
 65. ...  
 66. ...  
 67. ...  
 68. ...  
 69. ...  
 70. ...  
 71. ...  
 72. ...  
 73. ...  
 74. ...  
 75. ...  
 76. ...  
 77. ...  
 78. ...  
 79. ...  
 80. ...  
 81. ...  
 82. ...  
 83. ...  
 84. ...  
 85. ...  
 86. ...  
 87. ...  
 88. ...  
 89. ...  
 90. ...  
 91. ...  
 92. ...  
 93. ...  
 94. ...  
 95. ...  
 96. ...  
 97. ...  
 98. ...  
 99. ...  
 100. ...









या । इस का नाम शिल्प-कला या मूर्तिकारी की सब से बड़ी  
विशेषता यही है । इस काल की मूर्तिकारी या शिल्प-कला को  
साधारणतः 'इण्डो-मार्शियन' कहते हैं क्योंकि कुछ राजाओं  
के समय में इसका 'इण्डो-मार्शियन' दृढ़ थी । इस काल की मूर्तियों  
के नाम हैं — 'कालो-मार्शियन' भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर  
भाग में जन्म लेने के बाद भारत में आया जाना है और जिस पर  
यूनान की मूर्तिकारी का 'इण्डो-मार्शियन' प्रभाव है । यह गान्धार मूर्ति-  
कारी के नाम से प्रसिद्ध है । यद्यपि यह प्रभाव है कि इसमें  
आर्यत्व के अनेक भाग — यथा — भारतीय तथा सम्राज्यी—में  
हुई थी किन्तु यह यूनानी शिल्प कला का प्रभाव प्रतीत नहीं होता,  
जिसमें गान्धार मूर्तिकारी पर प्रभाव पड़ा है । यद्यपि 'गान्धार'  
शब्द का अर्थ है । इसका नाम 'गान्धार' शब्द का अर्थ 'गान्धार'  
प्रभाव है । यहाँ के इसमें भारतीय भाषा का प्रभाव है ।

गान्ध्याजी की भावना—पश्चिमात्य का धर्म अंधा है, अंधा है।  
 नाम—पश्चिमात्य का धर्म अंधा है, अंधा है।  
 धर्म—पश्चिमात्य का धर्म अंधा है, अंधा है।  
 धर्म—पश्चिमात्य का धर्म अंधा है, अंधा है।









## बौद्ध-कालीन भारत

दृष्टा। इन्में से बहुत से यूनानियों ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया। प्राचीन काल का शुद्ध बौद्ध मत, जो एक प्रकार से निराकार कृपायना का क्रम था, उन विदेशियों की समझ में न आ सकता था। अतएव उन लोगों ने बुद्ध भगवान की साधार उपासना करना आरम्भ किया। इसके लिये उन्होंने अपने यूनानी कारीगरों में बुद्ध भगवान की मूर्तियाँ बनवाईं। उस समय तक बुद्ध की कोई मूर्ति नहीं बनी थी; इससे उन यूनानियों के सामने बुद्ध की मूर्ति का कोई आदर्श न था। स्वभावतः उन लोगों ने यूनान की मूर्ति-कला के आदर्श पर ही बुद्ध की मूर्तियाँ गढ़ने का प्रयत्न किया। इस काम के लिये उन्होंने यूनान के मूर्त्येवता "अपोलो" की मूर्ति को अपना आदर्श माना। इसी लिये गंधार मूर्तिकारी में बुद्ध की मूर्तियाँ अपोलो देवता की मूर्तियों में बहुत कुछ मिलती जुलती हैं। इन सब मूर्तियों में बुद्ध भगवान की युवावस्था दिखावाई गई है। उनके शिर पर उष्णीश (पाटी) के आकार की एक जटा रहती है, जें "बुद्ध" का एक प्रधान लक्षण है। जटा के बाल घुंघराते और रूढ़िने और की मुँह दुष्ट होते हैं। दोनों भौंहों के बीच में बाल की एक गोल बिन्दी रहती है, जिसे "उर्मा" कहते हैं। बुद्ध के कलाई पर यह उर्मा ऊर्ध्व जन्म से थी और महापुरुष का एक प्रधान लक्षण समझी जाती थी। बुद्ध भगवान के दोनों कंधों से दोठें तक एक चादर लटकती रहती है, जिसकी सिफ्टवन और छतार-बराबर बहुत सलाई के साथ दिखावाये होते हैं। वहाँ तक कि कम्मं टहिर को बनावट और गठन बहुत ही मूर्ती के समान प्रकट होती है। गन्धार मूर्तिकारी में बुद्ध कभी बैठे हुए और







तीर्थ थी। इसके समीप लाल पत्थर की कई स्थानें हैं, जिस कारण प्राचीन काल में यह नगरी मूर्ति-निर्माण कला का एक केन्द्र बन गई थी। यहाँ के मूर्तिकार ममस्त उत्तरी भारत में प्रसिद्ध थे। जिस तरह आजकल उत्तरी भारत में जयपुर की मूर्तियों का प्रचार है, उसी तरह प्राचीन समय में मथुरा की बनी हुई मूर्तियों का प्रचार था। यहाँ की मूर्तिकारी इतनी प्रसिद्ध थी कि उत्तरी भारत के धनी मनुष्य अपने-अपने देवताओं की बड़ी बड़ी मूर्तियाँ यहाँ से बनवाकर सैकड़ों मील दूर अपने-अपने स्थान पर ले जाते थे। उदाहरण के लिये मथुरा की बनी हुई बहुत बड़ी बड़ी कई मूर्तियाँ चार सौ मील दूर सारनाथ में मिलती हैं। केवल कुषण काल में ही नहीं, बल्कि बाद के गुप्त काल में भी मथुरा की मूर्ति-निर्माण कला वैसी ही उन्नत अवस्था में थी। कुषण वंशी राजाओं का राज्य गंधार में भी था और मथुरा में भी। यही कारण है कि मथुरा की मूर्तिकारी पर गान्धार मूर्तिकारी का कुछ प्रभाव मालूम होता है। संभव है, उस समय गन्धार प्रान्त के कुछ मूर्ति-कार मथुरा में आये हों और अपना प्रभाव वहाँ की मूर्ति-निर्माण शैली पर छोड़ गये हों। मथुरा में कुछ मूर्तियाँ ऐसी भी मिली हैं, जिनके पक्ष, भाव तथा आकृति बितकुप्त यूनानियों की सी है।

सारनाथ—मथुरा के समान सारनाथ भी कुषण काल में बौद्ध और जैन धर्म का केन्द्र था। सारनाथ में इन दोनों धर्मों के अनेक मन्दिर और मठ थे, जिन्हें बाद की शताब्दी के अन्त में पट्टर सुसत्त्वानों ने तोड़कर मिट्टी में मिला दिया। हिन्दू धर्म के केन्द्र बनारस के प्राचीन मन्दिरों और मूर्तियों का भी यही हाल हुआ। सारनाथ के मूर्तिकार साधारण तौर पर बुद्ध के

1. The following are the (12) points to be  
observed in the case of a person who is  
suffering from a mental disorder. The first point is  
that the person should be kept in a safe place  
where he will not harm himself or others. The second  
point is that the person should be kept in a place  
where he will not be able to escape. The third point  
is that the person should be kept in a place where  
he will not be able to communicate with the outside  
world. The fourth point is that the person should  
be kept in a place where he will not be able to  
see or hear anything. The fifth point is that the  
person should be kept in a place where he will not  
be able to move. The sixth point is that the  
person should be kept in a place where he will not  
be able to feel anything. The seventh point is that  
the person should be kept in a place where he will  
not be able to think. The eighth point is that the  
person should be kept in a place where he will not  
be able to feel anything. The ninth point is that  
the person should be kept in a place where he will  
not be able to think. The tenth point is that the  
person should be kept in a place where he will not  
be able to feel anything. The eleventh point is that  
the person should be kept in a place where he will  
not be able to think. The twelfth point is that  
the person should be kept in a place where he will  
not be able to feel anything.

2. The following are the (12) points to be  
observed in the case of a person who is  
suffering from a mental disorder. The first point is  
that the person should be kept in a safe place  
where he will not harm himself or others. The second  
point is that the person should be kept in a place  
where he will not be able to escape. The third point  
is that the person should be kept in a place where  
he will not be able to communicate with the outside  
world. The fourth point is that the person should  
be kept in a place where he will not be able to  
see or hear anything. The fifth point is that the  
person should be kept in a place where he will not  
be able to move. The sixth point is that the  
person should be kept in a place where he will not  
be able to feel anything. The seventh point is that  
the person should be kept in a place where he will  
not be able to think. The eighth point is that the  
person should be kept in a place where he will not  
be able to feel anything. The ninth point is that  
the person should be kept in a place where he will  
not be able to think. The tenth point is that the  
person should be kept in a place where he will not  
be able to feel anything. The eleventh point is that  
the person should be kept in a place where he will  
not be able to think. The twelfth point is that  
the person should be kept in a place where he will  
not be able to feel anything.

तोयें थीं । इससे समग्र जगत्-व्यापक की कड़े स्थानों हैं जिस कारण प्राचीन काल में यह जगती मूर्ति-निर्माण कला का एक केन्द्र बन गई थी । यहाँ के मूर्तिकार सम्पूर्ण उत्तरी भारत में प्रसिद्ध थे । जिस तरह आजकल जगत में जयपुर की मूर्तियों का प्रचार है उसी तरह प्राचीन समय में मथुरा की बनी हुई मूर्तियों का प्रचार था । यहाँ की मूर्तिकला इतनी प्रसिद्ध थी कि उत्तरी भारत के सभी मनुष्य अपने-अपने-अपने स्थान पर ले जाते थे । उदाहरण के लिए मथुरा की बनी हुई बहुत बड़ी बड़ी कड़े मूर्तियाँ पार लौ सीत दूर सारनाथ में मिलती हैं । केवल कुपण काल में ही नहीं, बल्कि बाद के गुप्त काल में भी मथुरा की मूर्ति-निर्माण कला ऐसी ही उन्नत अवस्था में था । कुपण तथा राजाओं का राज्य गंधार में भी था और मथुरा में भी । यहाँ कारण है कि मथुरा की मूर्तिकारी पर गान्धार मूर्तिकारी का कुछ प्रभाव मान्य होता है । सम्भव है, उस समय गन्धार प्रांत के कुछ मूर्तिकार मथुरा में आये हों और अपनी प्रभाव वहाँ की मूर्ति-निर्माण शैली पर छोड़ गये हों । मथुरा में कुछ मूर्तियाँ ऐसी भी मिली हैं, जिनके वस्त्र, भाव तथा आकृति विवक्षित यूनानियों की सी है ।

सारनाथ—मथुरा के समान सारनाथ भी कुपण काल में बौद्ध और जैन धर्म का केन्द्र था । सारनाथ में इन दोनों धर्मों के अनेक मन्दिर और मठ थे, जिन्हें बारहवीं, शताब्दी के अन्त में कट्टर बुद्धभाजों ने तोड़कर मिट्टी में मिला दिया । हिन्दू धर्म के केन्द्र बनारस के प्राचीन मन्दिरों और मूर्तियों का भी यही हाल हुआ । सारनाथ के मूर्तिकार सारनाथ और परभुवर के



[illegible][illegible]





दोनों भोंदों के बीच में गला की एक गोलाकार बिन्दु अर्थात् कर्ण भी रहती है। गान्धार मूर्तियों की तरह बुद्ध के दोनों कन्धों में एक चादर पैर तक नटकती रहती है, किन्तु कपड़े की चारों ओर वैसी गयी के साथ नहीं दिखलाई गई, जैसी गुप्त काल की मूर्तियों में है। मूर्ति के सिर के चारों ओर एक बिलकुल सादा तथा अलङ्कार-रहित प्रभामण्डल भी रहता है। बाद के गुप्त काल में यही प्रभामण्डल सादा नहीं, किन्तु घेन-बूटों से सज्जा हुआ मिलता है। इसके सिवा कुपण काज की मूर्तियों में वह गभीरता, शान्ति तथा चित्ताकर्षक भाव नहीं है, जो गुप्त काल की मूर्तियों में है। कुपण काल की मूर्तियों में जो कुछ विदेशी भाव थे, वे गुप्त काल की मूर्तियों से बिलकुल दूर हो गये। गुप्त काल का इतिहास हमारे विषय के बाहर है, इसमें उस काल की शिल्प कला के सम्वन्ध में हम विशेष नहीं लिखना चाहते।





1. The first part of the document is a list of names and dates, which appears to be a record of some kind. The names are written in a cursive script, and the dates are in a more formal, printed style. The list is organized into two columns, with names on the left and dates on the right. The names are: "John Smith", "Jane Doe", "Robert Johnson", "Mary White", "Thomas Brown", "Elizabeth Black", "William Green", "Margaret Grey", "Charles Hall", "Anna Lee", "James King", "Sarah Miller", "George Taylor", "Lucy Wilson", "Henry Young", "Rebecca Adams", "Nathan Baker", "Abigail Clark", "Samuel Evans", "Miriam Foster", "Isaac Green", "Leah Hill", "Nathaniel Jones", "Ruth King", "Oscar Lewis", "Evelyn Martin", "Frank Nelson", "Dorothy Peterson", "Eugene Quinn", "Frances Reed", "Harold Scott", "Gladys Smith", "Irving Taylor", "Julia White", "Kenneth Young", "Lillian Black", "Maurice Brown", "Norma Clark", "Oscar Davis", "Paula Evans", "Ralph Foster", "Sara Green", "Timothy Hall", "Vivian King", "Walter Lee", "Xenia Miller", "Yvonne Nelson", "Zoe Peterson". The dates are: "1912-1-1", "1912-2-1", "1912-3-1", "1912-4-1", "1912-5-1", "1912-6-1", "1912-7-1", "1912-8-1", "1912-9-1", "1912-10-1", "1912-11-1", "1912-12-1", "1913-1-1", "1913-2-1", "1913-3-1", "1913-4-1", "1913-5-1", "1913-6-1", "1913-7-1", "1913-8-1", "1913-9-1", "1913-10-1", "1913-11-1", "1913-12-1", "1914-1-1", "1914-2-1", "1914-3-1", "1914-4-1", "1914-5-1", "1914-6-1", "1914-7-1", "1914-8-1", "1914-9-1", "1914-10-1", "1914-11-1", "1914-12-1", "1915-1-1", "1915-2-1", "1915-3-1", "1915-4-1", "1915-5-1", "1915-6-1", "1915-7-1", "1915-8-1", "1915-9-1", "1915-10-1", "1915-11-1", "1915-12-1", "1916-1-1", "1916-2-1", "1916-3-1", "1916-4-1", "1916-5-1", "1916-6-1", "1916-7-1", "1916-8-1", "1916-9-1", "1916-10-1", "1916-11-1", "1916-12-1", "1917-1-1", "1917-2-1", "1917-3-1", "1917-4-1", "1917-5-1", "1917-6-1", "1917-7-1", "1917-8-1", "1917-9-1", "1917-10-1", "1917-11-1", "1917-12-1", "1918-1-1", "1918-2-1", "1918-3-1", "1918-4-1", "1918-5-1", "1918-6-1", "1918-7-1", "1918-8-1", "1918-9-1", "1918-10-1", "1918-11-1", "1918-12-1", "1919-1-1", "1919-2-1", "1919-3-1", "1919-4-1", "1919-5-1", "1919-6-1", "1919-7-1", "1919-8-1", "1919-9-1", "1919-10-1", "1919-11-1", "1919-12-1", "1920-1-1", "1920-2-1", "1920-3-1", "1920-4-1", "1920-5-1", "1920-6-1", "1920-7-1", "1920-8-1", "1920-9-1", "1920-10-1", "1920-11-1", "1920-12-1", "1921-1-1", "1921-2-1", "1921-3-1", "1921-4-1", "1921-5-1", "1921-6-1", "1921-7-1", "1921-8-1", "1921-9-1", "1921-10-1", "1921-11-1", "1921-12-1", "1922-1-1", "1922-2-1", "1922-3-1", "1922-4-1", "1922-5-1", "1922-6-1", "1922-7-1", "1922-8-1", "1922-9-1", "1922-10-1", "1922-11-1", "1922-12-1", "1923-1-1", "1923-2-1", "1923-3-1", "1923-4-1", "1923-5-1", "1923-6-1", "1923-7-1", "1923-8-1", "1923-9-1", "1923-10-1", "1923-11-1", "1923-12-1", "1924-1-1", "1924-2-1", "1924-3-1", "1924-4-1", "1924-5-1", "1924-6-1", "1924-7-1", "1924-8-1", "1924-9-1", "1924-10-1", "1924-11-1", "1924-12-1", "1925-1-1", "1925-2-1", "1925-3-1", "1925-4-1", "1925-5-1", "1925-6-1", "1925-7-1", "1925-8-1", "1925-9-1", "1925-10-1", "1925-11-1", "1925-12-1", "1926-1-1", "1926-2-1", "1926-3-1", "1926-4-1", "1926-5-1", "1926-6-1", "1926-7-1", "1926-8-1", "1926-9-1", "1926-10-1", "1926-11-1", "1926-12-1", "1927-1-1", "1927-2-1", "1927-3-1", "1927-4-1", "1927-5-1", "1927-6-1", "1927-7-1", "1927-8-1", "1927-9-1", "1927-10-1", "1927-11-1", "1927-12-1", "1928-1-1", "1928-2-1", "1928-3-1", "1928-4-1", "1928-5-1", "1928-6-1", "1928-7-1", "1928-8-1", "1928-9-1", "1928-10-1", "1928-11-1", "1928-12-1", "1929-1-1", "1929-2-1", "1929-3-1", "1929-4-1", "1929-5-1", "1929-6-1", "1929-7-1", "1929-8-1", "1929-9-1", "1929-10-1", "1929-11-1", "1929-12-1", "1930-1-1", "1930-2-1", "1930-3-1", "1930-4-1", "1930-5-1", "1930-6-1", "1930-7-1", "1930-8-1", "1930-9-1", "1930-10-1", "1930-11-1", "1930-12-1", "1931-1-1", "1931-2-1", "1931-3-1", "1931-4-1", "1931-5-1", "1931-6-1", "1931-7-1", "1931-8-1", "1931-9-1", "1931-10-1", "1931-11-1", "1931-12-1", "1932-1-1", "1932-2-1", "1932-3-1", "1932-4-1", "1932-5-1", "1932-6-1", "1932-7-1", "1932-8-1", "1932-9-1", "1932-10-1", "1932-11-1", "1932-12-1", "1933-1-1", "1933-2-1", "1933-3-1", "1933-4-1", "1933-5-1", "1933-6-1", "1933-7-1", "1933-8-1", "1933-9-1", "1933-10-1", "1933-11-1", "1933-12-1", "1934-1-1", "1934-2-1", "1934-3-1", "1934-4-1", "1934-5-1", "1934-6-1", "1934-7-1", "1934-8-1", "1934-9-1", "1934-10-1", "1934-11-1", "1934-12-1", "1935-1-1", "1935-2-1", "1935-3-1", "1935-4-1", "1935-5-1", "1935-6-1", "1935-7-1", "1935-8-1", "1935-9-1", "1935-10-1", "1935-11-1", "1935-12-1", "1936-1-1", "1936-2-1", "1936-3-1", "1936-4-1", "1936-5-1", "1936-6-1", "1936-7-1", "1936-8-1", "1936-9-1", "1936-10-1", "1936-11-1", "1936-12-1", "1937-1-1", "1937-2-1", "1937-3-1", "1937-4-1", "1937-5-1", "1937-6-1", "1937-7-1", "1937-8-1", "1937-9-1", "1937-10-1", "1937-11-1", "1937-12-1", "1938-1-1", "1938-2-1", "1938-3-1", "1938-4-1", "1938-5-1", "1938-6-1", "1938-7-1", "1938-8-1", "1938-9-1", "1938-10-1", "1938-11-1", "1938-12-1", "1939-1-1", "1939-2-1", "1939-3-1", "1939-4-1", "1939-5-1", "1939-6-1", "1939-7-1", "1939-8-1", "1939-9-1", "1939-10-1", "1939-11-1", "1939-12-1", "1940-1-1", "1940-2-1", "1940-3-1", "1940-4-1", "1940-5-1", "1940-6-1", "1940-7-1", "1940-8-1", "1940-9-1", "1940-10-1", "1940-11-1", "1940-12-1", "1941-1-1", "1941-2-1", "1941-3-1", "1941-4-1", "1941-5-1", "1941-6-1", "1941-7-1", "1941-8-1", "1941-9-1", "1941-10-1", "1941-11-1", "1941-12-1", "1942-1-1", "1942-2-1", "1942-3-1", "1942-4-1", "1942-5-1", "1942-6-1", "1942-7-1", "1942-8-1", "1942-9-1", "1942-

1. The first part of the document is a list of names and addresses, which appears to be a directory or a list of subscribers. The names are written in a cursive script, and the addresses are listed below them.

[illegible]

(1) REDACTED

1. 1950-51 2. 1951-52 3. 1952-53 4. 1953-54 5. 1954-55 6. 1955-56 7. 1956-57 8. 1957-58 9. 1958-59 10. 1959-60 11. 1960-61 12. 1961-62 13. 1962-63 14. 1963-64 15. 1964-65 16. 1965-66 17. 1966-67 18. 1967-68 19. 1968-69 20. 1969-70 21. 1970-71 22. 1971-72 23. 1972-73 24. 1973-74 25. 1974-75 26. 1975-76 27. 1976-77 28. 1977-78 29. 1978-79 30. 1979-80 31. 1980-81 32. 1981-82 33. 1982-83 34. 1983-84 35. 1984-85 36. 1985-86 37. 1986-87 38. 1987-88 39. 1988-89 40. 1989-90 41. 1990-91 42. 1991-92 43. 1992-93 44. 1993-94 45. 1994-95 46. 1995-96 47. 1996-97 48. 1997-98 49. 1998-99 50. 1999-00 51. 2000-01 52. 2001-02 53. 2002-03 54. 2003-04 55. 2004-05 56. 2005-06 57. 2006-07 58. 2007-08 59. 2008-09 60. 2009-10 61. 2010-11 62. 2011-12 63. 2012-13 64. 2013-14 65. 2014-15 66. 2015-16 67. 2016-17 68. 2017-18 69. 2018-19 70. 2019-20 71. 2020-21 72. 2021-22 73. 2022-23 74. 2023-24 75. 2024-25 76. 2025-26 77. 2026-27 78. 2027-28 79. 2028-29 80. 2029-30 81. 2030-31 82. 2031-32 83. 2032-33 84. 2033-34 85. 2034-35 86. 2035-36 87. 2036-37 88. 2037-38 89. 2038-39 90. 2039-40 91. 2040-41 92. 2041-42 93. 2042-43 94. 2043-44 95. 2044-45 96. 2045-46 97. 2046-47 98. 2047-48 99. 2048-49 100. 2049-50 101. 2050-51 102. 2051-52 103. 2052-53 104. 2053-54 105. 2054-55 106. 2055-56 107. 2056-57 108. 2057-58 109. 2058-59 110. 2059-60 111. 2060-61 112. 2061-62 113. 2062-63 114. 2063-64 115. 2064-65 116. 2065-66 117. 2066-67 118. 2067-68 119. 2068-69 120. 2069-70 121. 2070-71 122. 2071-72 123. 2072-73 124. 2073-74 125. 2074-75 126. 2075-76 127. 2076-77 128. 2077-78 129. 2078-79 130. 2079-80 131. 2080-81 132. 2081-82 133. 2082-83 134. 2083-84 135. 2084-85 136. 2085-86 137. 2086-87 138. 2087-88 139. 2088-89 140. 2089-90 141. 2090-91 142. 2091-92 143. 2092-93 144. 2093-94 145. 2094-95 146. 2095-96 147. 2096-97 148. 2097-98 149. 2098-99 150. 2099-00 151. 2100-01 152. 2101-02 153. 2102-03 154. 2103-04 155. 2104-05 156. 2105-06 157. 2106-07 158. 2107-08 159. 2108-09 160. 2109-10 161. 2110-11 162. 2111-12 163. 2112-13 164. 2113-14 165. 2114-15 166. 2115-16 167. 2116-17 168. 2117-18 169. 2118-19 170. 2119-20 171. 2120-21 172. 2121-22 173. 2122-23 174. 2123-24 175. 2124-25 176. 2125-26 177. 2126-27 178. 2127-28 179. 2128-29 180. 2129-30 181. 2130-31 182. 2131-32 183. 2132-33 184. 2133-34 185. 2134-35 186. 2135-36 187. 2136-37 188. 2137-38 189. 2138-39 190. 2139-40 191. 2140-41 192. 2141-42 193. 2142-43 194. 2143-44 195. 2144-45 196. 2145-46 197. 2146-47 198. 2147-48 199. 2148-49 200. 2149-50 201. 2150-51 202. 2151-52 203. 2152-53 204. 2153-54 205. 2154-55 206. 2155-56 207. 2156-57 208. 2157-58 209. 2158-59 210. 2159-60 211. 2160-61 212. 2161-62 213. 2162-63 214. 2163-64 215. 2164-65 216. 2165-66 217. 2166-67 218. 2167-68 219. 2168-69 220. 2169-70 221. 2170-71 222. 2171-72 223. 2172-73 224. 2173-74 225. 2174-75 226. 2175-76 227. 2176-77 228. 2177-78 229. 2178-79 230. 2179-80 231. 2180-81 232. 2181-82 233. 2182-83 234. 2183-84 235. 2184-85 236. 2185-86 237. 2186-87 238. 2187-88 239. 2188-89 240. 2189-90 241. 2190-91 242. 2191-92 243. 2192-93 244. 2193-94 245. 2194-95 246. 2195-96 247. 2196-97 248. 2197-98 249. 2198-99 250. 2199-00 251. 2200-01 252. 2201-02 253. 2202-03 254. 2203-04 255. 2204-05 256. 2205-06 257. 2206-07 258. 2207-08 259. 2208-09 260. 2209-10 261. 2210-11 262. 2211-12 263. 2212-13 264. 2213-14 265. 2214-15 266. 2215-16 267. 2216-17 268. 2217-18 269. 2218-19 270. 2219-20 271. 2220-21 272. 2221-22 273. 2222-23 274. 2223-24 275. 2224-25 276. 2225-26 277. 2226-27 278. 2227-28 279. 2228-29 280. 2229-30 281. 2230-31 282. 2231-32 283. 2232-33 284. 2233-34 285. 2234-35 286. 2235-36 287. 2236-37 288. 2237-38 289. 2238-39 290. 2239-40 291. 2240-41 292. 2241-42 293. 2242-43 294. 2243-44 295. 2244-45 296. 2245-46 297. 2246-47 298. 2247-48 299. 2248-49 300. 2249-50 301. 2250-51 302. 2251-52 303. 2252-53 304. 2253-54 305. 2254-55 306. 2255-56 307. 2256-57 308. 2257-58 309. 2258-59 310. 2259-60 311. 2260-61 312. 2261-62 313. 2262-63 314. 2263-64 315. 2264-65 316. 2265-66 317. 2266-67 318. 2267-68 319. 2268-69 320. 2269-70 321. 2270-71 322. 2271-72 323. 2272-73

[illegible]





- (31) Eilen, J. H.—Epigraphy. Imperial Gazetteer II.  
(32) — Megs Mages, and Vonones J R. A. S 1907.  
(33) Foucher, A — The Beginnings of Buddhist Art.  
Translated from French by P. W. Thomas.  
(34) Gieger, W.—Dipavansa and Mahavamsa. Indian  
Antiquary 1906, p. 153.  
(35) Grenstedt, A — Buddhist Art in India.  
5 Hardy, R. S — Eastern Monarchism.  
(36) — Manual of Buddhism.  
(37) Hargreaves, H.—The History of Aryan Rule in India.  
(38) Havel, H. R.—The Buddhist Story in Stone.  
(39) Havel, H. R.—The History of Aryan Rule in India.  
(40) — Indian Sculpture and Painting.  
(41) Hoernle A. R. R.—History and Dialects of Gonda  
in Haricet, Encyclopedia of Religion and  
Ethics, Vol. I. p. 258.  
(42) — Proceedings of the Asiatic Society of Bengal.  
1898 p. 39  
p. 399  
(43) Hultsch H — Jaina at Bharhut. J. R. A. S. 1917.  
(44) Jacob H — On Nabatira and his Predecessors.  
Introduction to Sacred Books of the East, Vol.  
XXII and XLV.  
(45) — Jagatender Lal Jaiel—Origins of Jainism.  
Translated by various hands under the editor  
ship of H. B. Cowell.  
(46) Jaina — Edited by V. Fausbøll.  
(47) Jaina —  
(48) Jayram, K. P.—An Introduction to Hindu Poetry  
Modern Review, 1911.  
(49) Kennedy, J.—The Secret of Kailash. J. R. A. S.  
1912.



